Con. 3. IX-8-49
320

अंक 9
संख्या 8

मंगलवार
9 अगस्त
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप

[अनुच्छेद 255 से 260 पर विचार किया गया] 413–469

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 9 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 255—*(जारी)*

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स रायः** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अपने संशोधन पर कल मैं कुछ बोल चुका हूं। अपने संशोधन का सही रूप मैंने अब सभा के सामने रख दिया है। इससे सारी बातें स्पष्ट हो गई होंगी। अगर आप अनुमति दें तो इस संशोधन पर मैं आगे बोलूं।

***अध्यक्षः** कल जो संशोधन अपने पेश किया था, उसकी जगह मैं इसको ले लेता हूं।

कल जिस संशोधन पर हम विचार कर रहे थे, उस पर अब हम विचार करना जारी करते हैं।

***माननीय रेवरेंड जे.जे.एम. निकल्स रायः** इस संशोधन को पढ़कर अब मैं सुना दूं, श्रीमान्?

***अध्यक्षः** मत लेते समय मैं पढ़कर सुना दूंगा। श्री बी. दास!

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, हम अनुच्छेद 255 पर विचार कर रहे हैं। इसमें सामान्यतः प्रांतों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की गई है तथा अनुसूचित एवं जनजाति-क्षेत्रों के विकास के लिये और कुछ प्रान्तों की अनुसूचित जातियों के विकासार्थ सहायक अनुदान देने की व्यवस्था की गई है।

गरीब प्रांतों को 'गम की कहानी' सुनाने में मैं भी अपनी कमजोर आवाज का सहारा लगाऊंगा। संपन्न प्रांतों से आये हुए प्रतिनिधियों को और मानवता के महान पुजारी डॉ. अम्बेडकर को उनकी यह कष्ट-कथा कितनी भी अरूचिकर क्यों न लगती हो पर उन्हें यह सुननी ही होगी। मेरी आवाज के कमजोर होने का कारण यह है, श्रीमान्, कि डेढ़ सौ साल की ब्रिटिश अमलदारी में हमारा प्रांत सदा ही अनुन्नत रहा। अंग्रेजों ने यहां औपनिवेशिक ढंग की जो शासन-व्यवस्था स्थापित कर रखी थी वह यह चाहती थी कि सारा नियंत्रण केन्द्र के हाथ में हो और ब्रिटिश हुकूमत का प्रसार न सिर्फ भारतवर्ष तक ही सीमित रहे, बल्कि समूचे एशिया में उसका प्रभुत्व स्थापित हो जाये। इसलिये ब्रिटिश अमलदारी में केन्द्रीय शासन कोई भी रकम अनुन्नत प्रांतों को उनके विकास के लिए नहीं देना चाहता था। इन अनुन्नत प्रांत की समुन्नति के संबंध में कल यहां बहुत कुछ कहा जा चुका है। मसौदा-समिति में जिस तरह काम हो रहा है वह कोई खुशी की बात नहीं

[श्री बी. दास]

है। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कल यहां यह कहा कि मसौदा-समिति इसी निर्णय पर पहुंची है कि वित्त वितरण की जो पुरानी पद्धति है उसी पर चला जाये। मेरा यह ख्याल था कि मसौदा-समिति जो भी मसौदा इस संबंध में प्रस्तुत करेगी वह उन सिद्धांतों के ही अनुसार करेगी, जो इस सभा द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ-समिति ने निर्धारित कर रखे हैं या इस सभा की इच्छाओं के अनुसार मसौदा बनायेगी। अन्धकार प्रच्छन आसाम प्रांत के लिए वकालत करते हुए कल सैयद मुहम्मद सादुल्ला साहब ने यहां जो शानदार वक्तृता दी है, उसके लिए मैं उनको बधाई देता हूं। उससे प्रकट होता है कि मसौदा-समिति में इस प्रश्न पर मतैक्य नहीं था। फिर भी मसौदा-समिति का नाम लेकर हमसे यहां यह कहा जा रहा है कि सिवाय इसके कि अनुच्छेद 254 या 255 को अथवा अनुवर्ती अनुच्छेदों को जिन पर कल बहस की जायेगी, हम स्वीकाश्र करें, हमारे सामने दूसरा कोई वैकल्पिक मार्ग नहीं है। मैं यह समझता था कि डॉ. अम्बेडकर दलितों एवं असहायों के प्रति सदा सहानुभूति रखते हैं, क्योंकि वह मानवीय भावना रखने वाले प्राणी हैं। अगर केन्द्रीय शासन अपने पूर्ववर्ती विदेशी शासकों—ब्रिटिश हुकूमत—की परम्परा पर ही चलता है, यदि सभी कर-साधनों पर अपना ही एकाधिकार रखता है और मसौदा-समिति और इस सभा को ऐसे किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायक नहीं होता है, जिससे आय का समान वितरण हो सके, ताकि सभी प्रांत एक समान स्तर पर खड़े हो सकें, तो यह कहना पड़ेगा कि हमारा यह संविधान केवल कागज का टुकड़ा मात्र ही है। लार्ड मेस्टन जैसे विदेशी शासक की भी यह राय थी कि बिहार, उड़ीसा और आसाम को सहायता देना आवश्यक है। उस समय सर ओटो नेमर के निर्णय में भी यह मंजूर किया गया था कि कुछ प्रांत सर्वथा अनुन्नत हैं और उनके विकास के लिए कुछ आय-साधनों को उनके हाथ में दे देना जरूरी है, पर तत्कालीन स्थिति में इन प्रांतों को अधिक रकम की अनुदान का निर्णय नहीं किया जा सका। किन्तु आज हमारी अपनी केन्द्रीय सरकार की ओर से बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर साहब ने यह फरमाया है कि इन अभागे अनुन्नत प्रांतों के व्यय स्तर को ऊंचा उठाने के लिए भारत सरकार के पास कोई खास स्कीम या निश्चित योजना नहीं है। उन अनुन्नत प्रांतों में आज बिहार, उड़ीसा तथा आसाम के प्रांत शामिल हैं और दैव तथा मानव कृत्यों के फलस्वरूप देश का जो विभाजन हुआ है, उससे पश्चिमी बंगाल भी अब इन्हीं की श्रेणी में आ गया है।

अभी उस दिन नौकरशाही मनोवृत्ति से तैयार किये गये उस लेख (Document) का मैंने यहां जिक्र किया है, श्रीमान्, जिसे भारत सरकार के वित्त विभाग ने सरकार समिति के समक्ष रखा था। भारत सरकार को उस समय तक आजादी मिल चुकी थी गोकि उसे आजादी पाये पांच ही महीने हुए थे। पर उसके वित्त विभाग ने जो लेख विशेषज्ञ समिति के सामने रखा था, वह सर्वथा स्वेच्छाचरिता से एवं नौकरशाही मनोवृत्ति से तैयार किया गया था। वह सर्वथा हृदयहीन एवं निष्प्राण लेख था जिसमें इस बात का कोई भी आभास नहीं मिलता था कि वित्त विभाग अपने उन गम्भीर दायित्वों की अनुभूति रखता है, जो सर्वसत्ता प्राप्त एक स्वतंत्र राज्य का वित्त विभाग होने के नाते उस पर लागू होते हैं। उसने सारे राजस्व को अपने ही हाथ में रखना चाहा है और वह भी अपने प्रयास के गिरने पर नहीं, बल्कि

केवल इसलिए कि पूर्ववर्ती ब्रिटिश हुकूमत से उसे विरासत में एक ऐसी व्यवस्था प्राप्त हो गई है, जिसमें सारा आगम केन्द्र के ही हाथ में रखा गया है। स्वतंत्रता के संबंध में मेरी जो धारणा थी वह भ्रम सिद्ध हुई और अब मैं स्वतंत्रता का स्वप्न नहीं देखता। आज मैं स्वतंत्रता के वातावरण में नहीं जी रहा हूं। दैवात्, परिस्थिति वशात् आज हम राष्ट्रमंडल का एक अंग बन गये हैं। आज समाचार पत्रों को—चाहे भारतीय समाचार पत्र हों या ब्रिटिश—पढ़ने में लज्जा आती है। सभी में यही देखने को मिलता है कि भारतवर्ष राष्ट्रमंडल का एक अंग है, सुतरां उसे अपने सारे आर्थिक साधनों को उसकी इच्छा पर छोड़कर संयुक्त राज्य (United Kingdoms) के सिद्धांत का अनुसरण करना चाहिये। आज हमारे सभी साधनों को ब्रिटिश आर्थिक नीति के अधीन कर दिया गया है और वित्त विभाग का कोई प्रतिनिधि यहां उपस्थित नहीं दिखाई देता है, जो हमें यह बताये कि उसके प्रकार्य क्या हैं या यह बतलाये कि भारत सरकार का रुख क्या है। अभी मैंने जिस लेख का जिक्र किया है वह स्मृति पत्र है, जिसे हमारे केन्द्रीय शासन के वित्त विभाग ने सरकार समिति के समक्ष रखा था और इसके पृष्ठ 8 पर गत दस साल के आय-व्यय का विवरण दिया हुआ है। इसमें कहा गया है कि भारत सरकार की इस अवधि में कुल आमदनी रही है 1908 करोड़ और बचाव पर खर्च पड़ा है 1887 करोड़ और गैर फौजी खर्च रहा है 1731 करोड़। हम जानते हैं कि बचाव पर जो इतना बड़ा खर्च किया गया है, वह वहां से पूरा किया गया है। यह ऋण लेकर पूरा किया गया है और इससे अनुत्पादक सरकारी कर्ज की रकम बहुत बढ़ गई है। पर स्मृतिपत्र के पृष्ठ तीन पर पैरा 8 में इन लोगों ने यानी वित्त विभाग ने—मैं अर्थ सचिवालय के नाम से इसे नहीं पुकारूंगा क्योंकि यह अर्थ सचिवालय के प्रकार्यों को न तब समझता था और न अब समझता है—यह कहा है कि इस दस साल की अवधि में वित्त विभाग ने 196.7 करोड़ की सहायता प्रांतों को दी है। इन लोगों का यह कहना है कि बावजूद इस बात के कि केन्द्र ने बड़ी-बड़ी योजनाओं को हाथ में लेने का वचन दे रखा था उसने करीब 200 करोड़ रुपये प्रांतों को इस अवधि में दिये। इससे वित्त विभाग की नौकरशाही मनोवृत्ति और भावना का स्पष्ट परिचय मिलता है और इस लेख को उसने आज से करीब डेढ़ साल पहिले तैयार किया था। पर इस अवधि में उसमें कोई अन्तर नहीं आया दीखता है। आइये, हम उसके इस कथन का ही विवेचन करें। 1937-38 में केन्द्र की वार्षिक आय थी 86 करोड़। 1946-47 में उसकी आय थी 336 करोड़ और 1949-50 में उसकी आय है 325 करोड़। इस आय को आखिर भारत सरकार ने खुद को पैदा नहीं किया है। उसे यह आय प्राप्त हुई है जनता से और फिर भी उसने जो 200 करोड़ 10 वर्ष में जनता को दिये हैं, उस पर उसे जलन होती है। 1968 करोड़ रुपयों में से 200 करोड़ की रकम इसने प्रांतों को दी है, जिसका मतलब यह हुआ कि अपनी आय का केवल 10 प्रतिशत अंश उसने प्रांतों को दिया है। पर उसे इस 10 प्रतिशत के लिए भी जलन होती है।

हम यहां अनुच्छेद 255 पर विचार कर रहे हैं जिसमें सहायक अनुदान की व्यवस्था की गई है। मैं पूछता हूं कि भारतीय शासन के वित्त विभाग को किसने इस स्थिति में रखा है कि वह दानशील बनकर आसाम, उड़ीसा, बिहार और बंगाल जैसे अनुन्नत प्रांतों को जब तक खरात के रूप में कुछ दे दिया करता है? हमारी मांग न्याय और समता के सिद्धांत पर आधृत है। हमे केन्द्र से यह मांग करने का अधिकार है कि सभी प्रांतों को सामाजिक न्याय प्राप्त होना चाहिये,

[श्री बी. दास]

सभी प्रांतों की आय या राजस्व के लिये एक समान स्तर निश्चित होना चाहिये। हमारी मांग को इस बिना पर वित्त-विभाग ठुकरा देता है कि हमारे प्रांत की, आसाम प्रांत की आय फ़ी व्यक्ति सिर्फ़ पांच रुपये है। हमारे प्रान्त में फ़ी व्यक्ति पांच रुपये की आय होती है, इसमें हमारा क्या दोष है? सारा दोष है विदेशी हुकूमत की उस व्यवस्था का, जो विरासत के रूप में आज भी यहां वर्तमान है। आज भारत सरकार का प्रतिनिधि यहां खड़ा होकर तरोरी के साथ यह कहता है कि प्रांतों के लिये आय के वितरण की जो वर्तमान व्यवस्था है, उसमें कोई भी परिवर्तन करने के लिए केन्द्रीय शासन तैयार नहीं है। मैंने शुक्रवार को यह निवेदन किया था, श्रीमान्, कि केन्द्र और प्रांतों के बीच वित्त के पुनः वितरण से संबंध रखने वाले इन अनुच्छेदों पर जब यहां विचार हो जाये, तो कृपया आप स्वयं इन प्रावधानों पर गौर करके यह देखेंगे कि क्या केन्द्र ने अपनी शक्तियों पर इस तरह अमल किया है, अपने कर्तव्यों का उस तरह पालन किया है कि उन प्रदेशों को, जहां संविधान के लागू होते ही स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन का एक समुन्नत स्तर अस्तित्व में आ जाना जरूरी है, अपने प्रशासन स्तर को ऊंचा उठाने की और समुन्नति के निम्नतम स्तर तक पहुंचने की गुंजाइश मिलती हो? आखिर मैं यह मांग तो कर नहीं रहा हूं कि आगमों का केन्द्र इस प्रकार वितरण करें कि आसाम और उड़ीसा अपनी आमदनी से 25 रुपये फ़ी व्यक्ति के हिसाब से खर्च कर सके। मैं यह मांग नहीं कर रहा हूं। पहले इसके कि मसौदा संविधान के रूप में यहां स्वीकृत हो, इस सभा को यह अवश्य निश्चित कर देना चाहिये कि प्रांतों के पास राजस्व के रूप में कम से कम अमुक रकम अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये, ताकि सभी प्रांत समान आधार पर अपना कार्य शुरू कर सकें। अगर यह सर्वसत्ता धारिणी सभा ऐसा नहीं करती है तो मैं कहूंगा कि वह अपने को सर्वथा निरर्थक एवं महत्व शून्य सिद्ध करेगी। अनुच्छेद 255 में कहा गया है कि "ऐसी राशियां जो संसद् विधि द्वारा प्रावहित करे, उन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में.....जिन राज्यों के विषय में संसद् यह निश्चित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है...।" माननीय मित्र रेवरेंड निकलस राय ने उस संबंध में एक संशोधन रखा, जिसका मुख्य अभिप्राय यह है कि प्रांतों को फिलहाल जो सहायता केन्द्र से मिलती है, वह तब तक जारी रखी जाये जब तक कि एडहाक कमेटी या वित्त आयोग की स्थापना न हो जाये। अनुन्नत प्रांतों से आये हुए मित्रों को इस बात का सर्वथा सन्देह है कि भारत सरकार का वित्त-विभाग कहीं और निरंकुश न बन जाये और वर्तमान सहायता को बन्द न कर दे। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने यहां अनुच्छेद 256 के प्रावधानों का गुणगान खूब ही लच्छेदार भाषा में किया है; आसाम प्रांत की समुन्नति में और जनजाति क्षेत्रों के विकास में कितने सहायक ये प्रावधान हो सकते हैं, इस पर आपने बड़ी बातें कहीं हैं। इस प्रसंग में आपने अनुच्छेद 255 के परन्तुक-क का उद्धरण दिया है जिसमें कहा गया है कि इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहिले के तीन वर्षों में अपने राजस्वों से जो औसतन अधिक व्यय इन प्रांतों को उठाना पड़ा हो, वह राशि इन राज्यों के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में दी जायेगी। इस संबंध में मुझे यह कहना पड़ेगा, श्रीमान्, कि परम मानव डॉ. अम्बेडकर का यह हिसाब बड़ा गलत है। आसाम और उड़ीसा जैसे अनुन्नत प्रांतों के पास तो कोई साधन ही नहीं था, जिससे वह इन जन-जाति-क्षेत्रों की समुन्नति पर खर्च करते। भारत शासन-अधिनियम 1935 का

वहां उद्धरण देने का डॉ. अम्बेडकर को इतना शौक है, मानों वह अधिनियम कोई बहुत बड़ा स्वतंत्रता पत्र है, जिसके आधार पर सभी देशों के लिए संविधान बनाये जा सकते हों। उनके इस अधिनियम में यह प्रावधान जरूर रखा गया है कि भारत सरकार का यह कर्तव्य होगा कि इन जनजाति-क्षेत्रों की समुन्नति के लिये वह सहायता दे। किन्तु यह प्रावधान सदा कोरा कागजी प्रावधान ही रहा और कभी अमल में नहीं लाया गया। इस अधिनियम 1935 को केन्द्र के लिए हमने कभी स्वीकार ही नहीं किया। अब मैं यह समझ रहा हूं, उसे न स्वीकार करना हम लोगों की बड़ी गलती रही। हमें इस अधिनियम को यानी संघात्मक संविधान को केन्द्र के लिए स्वीकार करना चाहिये था। अगर हमने उसे मान लिया होता तो आज हम कहीं अच्छे रहते। हमने केन्द्र के लिए इस अधिनियम को नहीं स्वीकार किया, इससे नतीजा क्या निकला? केन्द्रीय शासन ने इन अनुन्नत प्रांतों के जनजाति-क्षेत्रों के विकास के लिए सहायता दी? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि उसने सहायता नहीं दी। कभी-कभी भिक्षा के रूप में केन्द्रीय शासन ने कुछ दान जरूर दे दिये हैं, पर जनजाति-क्षेत्रों के विकास के लिए वस्तुतः केन्द्रीय शासन ने कोई मदद नहीं दी है। नागा, खासी तथा आसाम में बसने वाली जो अन्य बन जातियां है, वह आज भी उसी हालत में है जिसमें कि पहिले थीं। इसने जो कुछ भी किया वह केवल ब्रिटिश हुकूमत की रक्षा के लिए वहां किया और हमें मालूम ही है कि गत युद्ध में शत्रु हमारी किस सीमा में प्रविष्ट हुए थे। कोहिमा के युद्ध-क्षेत्र में सीमावर्ती पहाड़ियों से होकर शत्रु आये थे। इसलिये यहां जो कहा जा रहा है और सदम्भ कहा जा रहा है कि संविधान के प्रारम्भ के पूर्व के तीन वर्षों में जो वहां औसतन व्यय किया गया होगा, उतनी रकम इन अनुन्नत प्रांतों को विकासार्थ सहायता के रूप में अवश्य दी जायेगी। इससे यही प्रकट होता है कि भारत सरकार के वित्त-विभाग में समस्या के निराकरण की क्षमता नहीं है। वह स्थिति का सामना करने के लिए तैयार नहीं है। मैं भी सिद्धांत पसन्द व्यक्ति हूं, श्रीमान् और माननीय मित्र पंडित कुंजरू और डॉ. अम्बेडकर के इस कथन से मतैक्य रखता हूं कि केन्द्रीय सरकार तथा प्रांतों का आर्थिक संबंध कतिपय वैत्तिक सिद्धांतों पर आधृत होना चाहिये। पर सवाल तो यही है कि वह सिद्धांत क्या होंगे, जिनके अनुसार इस आर्थिक संबंध की व्यवस्था की जायेगी? माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर बम्बई से आये हैं, जहां फ़ी व्यक्ति की आय औसतन 25 रुपये सालाना है और आप यह नहीं चाहते हैं कि आयात शुल्क का वितरण कुछ प्रांतों को असमान रूप में किया जाये। इस संबंध में आपने विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट का उद्धरण दिया हैं मुझे यह देखकर एक हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ है कि भारत सरकार तथा डॉ. अम्बेडकर ने उस समिति की सिफारिशों के कम से कम कुछ अंशों को स्वीकार तो किया। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस संबंध में विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट के एक स्थल का हवाला दिया है, पर अनुवर्ती पंक्तियों की, जो पटसन-शुल्क के वितरण के संबंध में हैं, आपने कोई यहां चर्चा ही नहीं की और उनका हवाला देना भूल गये। मैं जानता हूं, श्रीमान्, कि हम यहां पटसन-शुल्क के अंश के संबंध में नहीं विचार कर रहे हैं। हम सहायक अनुदान के संबंध में विचार कर रहे हैं और इस प्रसंग में पटसन शुल्क का जिक्र आना स्वाभाविक है। उक्त रिपोर्ट के पृष्ट 9 पर पैरा 36 में जहां सरकार समिति ने दस साल तक रकम देने की बात कही है, वहां उसने यह भी कहा है कि ....."अगर दस साल की समाप्ति पर, जो अवधि कि हमारे ख्याल में अपने साधनों के विकासार्थ प्रांतों के लिये पर्याप्त होनी चाहिये, अगर प्रांतों को फिर भी

[श्री बी. दास]

सहायता की आवश्यकता हो ताकि वह अपने राजस्व की कमी को पूरा कर सकें, तो अवश्य ही उन्हें केन्द्र से सहायक अनुदान मांगने का अधिकार रहेगा। और उनकी मांग पर यथासमय वित्त-आयोग विचार करेगा।" पर जो अनुच्छेद 254 कल यहां स्वीकार किया गया है, उसमें डॉ. अम्बेडकर ने समिति की इस सिफारिश को कि सहायक अनुदान प्रांतों को तब तक दिये जायेंगे जब तक कि उनके आय साधन समुचित स्तर तक न पहुंच जायें, स्थान नहीं दिया है। हमारे अनुन्नत प्रांतों को केन्द्र व्यय के लिये उतनी भी रकम नहीं दे रहा है, जो व्यय के निम्नतम स्तर के हिसाब से अपेक्षित होती है। और फिर अनुच्छेद 254 के द्वारा तो हमें केन्द्र अब भी एक अनिश्चित अवस्था में रख रहा है। उड़ीसा को केवल तीन लाख रुपये दिये जाते हैं। मैं यहां उड़ीसा के लिए नहीं वकालत कर रहा हूं। मैं यहां इसलिए इतनी वकालत कर रहा हूं कि सभी प्रांतों के साथ न्याय हो, उनके साथ समान व्यवहार किया जाये। इस संविधान में एक ऐसा प्रावधान कहीं आना ही चाहिये, जिससे उस भूल का अपने आप सुधार हो जाये, जो केन्द्र ने मनमाने ढंग से संविधान के अनुच्छेद 254 द्वारा किया है। यही कारण है जो मैं आपके सामने इतनी वकालत कर रहा हूं, श्रीमान्, और इस सर्वसत्ताधारिणी संविधान-सभा का संरक्षक समय कर ही मैं आपसे इतना आग्रह कर रहा हूं। आप कृपया इस बात का ख्याल रखें कि संविधान में एक ऐसा प्रावधान जरूर ही रहे, जिससे भारत सरकार अपनी इस निरंकुश और नौकरशाही मनोवृत्ति को छोड़ने के लिए बाध्य हो जाये और अपने आगमों को प्रांतों में समुचित रीति से वितरित करें, ताकि वे अपना विकास कर सकें और वित्त आयोग या अर्थमंत्री की दया पर ही उनको न निर्भर रहना पड़े। यह वित्त आयोग या अर्थमंत्री तो सदा नौकरशाही मनोवृत्ति रखने वाले उन प्राधिकारियों से पथ प्रदर्शित होते रहेंगे, जो आज करीब सन् 1924 से ही अपनी इन जगहों पर विराजमान हैं और जिनको अपने उन नवीन दायित्वों की किंचित्मात्र भी अनुभूति नहीं हो पाई है, जो स्वतंत्रता के फलस्वरूप आज उन पर आरोपित हो गये हैं।

नलिनी सरकार कमेटी की सभी सिफारिशों को हमें स्वीकार करना चाहिये न कि उनके किसी एक अंश को, क्योंकि वित्त आयोग को शीघ्र स्थापित करने का सुझाव इसी का दिया हुआ है। हम जानते हैं कि इस आयोग की स्थापना स्थगित रखी गई है। डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन रखा है, उसमें वित्त आयोग की स्थापना का जिक्र जरूर है। पर इसका मतलब तो यह हुआ कि इन दस वर्षों में बंगाल करीब 100 करोड़ की आमदनी से वंचित रह जायेगा और आज से चार साल तक उसकी सम्भाव्य कमी पर विचार ही न किया जायेगा। मैं पूछता हूं, क्या यह न्याय है? क्या यह उचित हो रहा है? हम यहां हमेशा ही न्याय अधिकारों का जिक्र करते हैं। पर इन न्याय अधिकारों की सार्थकता ही क्या है, जब देश के करोड़ों निवासियों को प्रशासन की ऐसी व्यवस्था से भी वंचित रखा जाता है, जो प्रशासन के निम्नतम स्तर के हिसाब से उनके लिए अपेक्षित है और वह अपना विकास ही नहीं कर पाते हैं? मद्रास, बम्बई और संयुक्त-प्रांत जैसे समधिक सम्पन्न प्रदेशों के प्रतिनिधि अगर उस संबंध में आज यहां मौन रह जाते हैं, अगर वह यह समझते हैं कि कर्तव्य के नाते उनके लिये यह देखना जरूरी नहीं है कि अनुन्नत प्रान्तों के अर्थ के संबंध में न्याय हो, तो मैं कहूंगा कि वह बहुत बड़े भ्रम में हैं। अगर वह यह समझते हैं कि उनकी समृद्धि से ही भारत की समृद्धि

में वृद्धि हो जायेगी, तो वह सर्वथा भ्रम में हैं। यदि भारत के पूर्वी भाग के इतने प्रांत भूखें मरते हैं, यदि उनका दारिद्रय बना रहता है और वहां निवासियों का जीवन स्तर समुन्नत नहीं हो पाता है, तो भला भारत कैसे सम्पन्न हो सकेगा? इस अवस्था में, हमारी इस मांग पर कि हमारे प्रशासन-स्तर को समन्नत बनाने के लिए हमें इतने आय-साधन अवश्य दिये जायें जिनमें इतनी आमदनी हमें जरूर हो सके जो आगम के निम्नतम स्तर के हिसाब से अपेक्षित है, मद्रास के भाई क्योंकर हंस सकते हैं? भारत सरकार ने इस समस्या का न तो सामना किया है और न कर रही है क्योंकि वह एक दिवालिया सरकार हो गई है। पर इस सर्वसत्ताधारिणी सभा को उसके दिवालियापन से कोई सरोकार नहीं है। वित्त विभाग के प्रतिनिधि को यहां आकर हमें यह बतलाना चाहिये कि आगमों के पुनर्वितरण के संबंध में वह किस योजना पर चलना चाहता है। उनके मन में क्या है इसे वह हमें नहीं बता रहे हैं और अरसा तक हमें उसी दु:खद स्थिति में रखे रहना चाहते हैं, जिसमें कि हम विदेशी शासन के दिनों में थे।

इस महती सभा के समक्ष मैं यह कहूंगा कि संविधान के मसौदे में ये जो वित्त विषयक प्रावधान रखे गये हैं वह सिर्फ ढकोसला है। उनसे प्रांतों में कोई लोकतंत्रीय भावना नहीं पैदा हो पाती है, इनसे प्रातों को इस बात में सहायता नहीं मिल पाती है कि संविधान के अधीन वह आशान्वित रह सकें और आशा के साथ जीवन का पुनर्निर्माण कर सकें। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने कल यहां अपनी वक्तृता में नलिनी सरकार कमेटी की रिपोर्ट की विद्यमानता को स्वीकार किया और यह बतलाया कि उसके आधे अंश को मानने के लिए वह तैयार है। यह तो आपके वश की बात है, श्रीमान्, कि आप सरकार कमेटी की रिपोर्ट की छानबीन के लिए इस सभा के सदस्यों की एक समिति नियुक्त कर दें, ताकि इस समिति की उन उपयोगी सिफारिशों को, जो अनुन्नत प्रांतों के विकासार्थ सुझाई गई हों, हम संविधान में स्थान दे सकें। आज केन्द्रीय सरकार खुद तंगिश में है, इसलिए आगमों को प्रांतों को सौंपने में उसे अपना नुकसान दिखाई दे रहा है। इस संबंध में कानून बनाने का काम संसद पर छोड़ा जा रहा है, पर हो सकता है संसद् कोई कानून न बनावे। गत दो वर्षों से संसद में वित्त विभाग का आखिर क्या रुख रहा है? इसके लिए अकेले डॉ. मथाई को ही मैं नहीं दोषी बताता हूं। डॉ. मथाई और उनके पूर्ववर्ती अर्थ मंत्री श्री सम्मुखम चेट्टी स्वतंत्र भारत के दोनों ही अर्थ मंत्री दोषी हैं। वित्त विभाग जिस नीति को यहां चला रहा है मैं उसकी तीव्र निन्दा करता हूं। डॉ. मथाई यह सोच सकते हैं कि कानून आज उनके पक्ष में है और यत्र तत्र थोड़ी बहुत सहायता देकर ही वह यह दिखा सकते हैं कि वित्त विभाग ने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है, पर न्याय की मांग तो यह है कि आगमों का और अच्छा और सम्यक् वितरण प्रांतों में किया जाये। फिस्कल कमीशन की नियुक्ति की खबर हम भी सुन चुके हैं। हम यह जाते हैं कि फिस्कल कमीशन नियुक्त हो चुका है और हमारे सुयोग्य मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी उसके सभापति हैं। भारत की अर्थ नीति निर्धारित करने में आखिर उनको कितने दिन लगेंगे? संसद में श्री सम्मुखम चेट्टी ने यह घोषित किया था कि करारोपण परिप्रश्न समिति (Taxation Inquiry Committee) कायम की जायेगी जो इस बात की जांच करेगी कि क्या क्या कर लगाये जाने चाहियें। इस समिति के मन्तव्यों के आधार पर यह सभा तथा देश इसका निर्णय करेगा कि कौन-कौन आय साधन प्रांतों को दिये जायें। पर इस घोषणा के एक साल बाद यहां सभा में डॉ. मथाई ने यह

[श्री बी. दास]

फरमाया है कि जब तक हमें यह न मालूम हो जाये कि फ़ी व्यक्ति की औसत आय क्या पड़ती है, जब तक हमें देश की आय का पता न चल जाये, तब तक टैक्सेशन इन्क्वायरी कमेटी न नियुक्त की जायेगी।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य को मैं यह बताना चाहता हूं कि यहां भारत सरकार पर नहीं विचार किया जा रहा है। हम यहां संविधान पर विचार कर रहे हैं और उन्हें अपनी बातों को संविधान तक तथा उसमें रखे गये प्रावधानों तक ही सीमित रखना चाहिये।

***श्री बी. दासः** धन्यवाद, श्रीमान्! मैं संविधान तक ही अपने को सीमित रखने की कोशिश कर रहा हूं। पर मुझे खेद है कि इस सिलसिले में भारत सरकार का नाम मुझे लाना पड़ जाता है। राजा चाल्स के सर की तरह मेरी वक्तृता में सारी बुराइयों की जड़ भारत सरकार ही दिखाई देती है।

***अध्यक्षः** ऐसा ही तो मालूम होता है।

***श्री बी. दासः** हां, श्रीमान्, पर सवाल यह है कि जब तक कि आगमों के वितरण की एक आधारभूत पद्धति संविधान में ही नहीं लिपिबद्ध कर दी जाती है, तो प्रांतों को आमदनी कहां से होगी और सहायक अनुदान भी उन्हें कैसे मिल सकेगा? इसी बात को ध्यान में रखकर तो मैं यहां बोल रहा हूं। उदाहरण देकर मैं यह दिखा रहा था और अभी आगे भी दिखाना चाहता हूं कि भारत सरकार जान बूझकर उस दिन को टालती जा रही है, जबकि उसे अपनी इस फिजूल खर्ची को बन्द कर देना होगा और अपने आगम का ठीक-ठीक हिस्सा प्रान्तों को दे देना होगा। मैं यही दिखाने की कोशिश कर रहा हूं। अगर इस प्रयास में, अपनी वक्तृता में, मैं यत्र तत्र बहक जाता हूं तो इसका कारण यही है कि डॉ. अम्बेडकर की तरह एक प्रतिभाशाली वक्ता में नहीं हूं और मुझे घूम फिर कर ही अपनी बात बतानी पड़ती है।

***अध्यक्षः** इन वित्त विषयक प्रावधानों पर विचार करते हुए सदस्यों ने जो भी वक्तृतायें दी हैं, मैंने उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया है, क्योंकि मैं यह महसूस करता हूं कि सदस्यों को जो भी शिकायत हो उसे यहां उन्हें जरूर व्यक्त करना चाहिये। किन्तु बहुधा यह हुआ है कि जो विशेष अनुच्छेद विचाराधीन है उससे बहुत बाहर की बातें यहां कही गई हैं और ऐसी वस्तृताएं सर्वथा निरर्थक होती हैं, उस हालत में जबकि ऐसा संशोधन नहीं उपस्थित रहता है जिससे कि सभा को मसौदा-समिति द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव के प्रतिकूल मत देने में समर्थ हो सके। इसलिये सदस्यों से मैं यह कहूंगा कि चूंकि उन्होंने अपनी शिकायतों को व्यक्त कर दिया है, अब उन्हें अनुच्छेद तक, या अगर कोई संशोधन हो तो उन तक ही अपनी बात सीमित रखनी चाहिये। पर भारत सरकार की आय नीति पर यहां बहस करना तो कोई माने नहीं रखता। भारत सरकार पर तो हम विचार नहीं कर रहे हैं और न भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में ही यहां कोई व्यक्ति उपस्थित है। यहां बैठक हो रही है संविधान-सभा की, जिसको एक विशेष कर्तव्य सौंपा गया है और वह कर्तव्य है संविधान-निर्माण का। हमें इससे कोई सरोकार नहीं है कि भारत सरकार क्या करती है संविधान निर्माण का। हमें यहां इससे कोई सरोकार नहीं है कि भारत सरकार क्या करती आ रही है या इस समय क्या कर रही है। हमें तो यहां सिर्फ यह सोचना है कि संविधान कैसे बनाया

जाये। इसलिये यदि सदस्यों को भारत सरकार के विरुद्ध कोई शिकायत है, तो उसे वह अन्यत्र व्यक्त कर सकते हैं। यहां तो उन्हें अपनी बातों को सिर्फ अनुच्छेद तक या उन संशोधनों तक ही सीमित रखना चाहिये, जिन्हें वह पेश कर रहे हों। संशोधन पेश करने का अधिकार सदस्यों को था। पर मैं यह देखता हूं कि उन्होंने कोई संशोधन नहीं रखा है और फिर भी केवल भाषण दिये जा रहे हैं जो मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित मसौदे के खिलाफ हैं।

***श्री बी. दास:** मैं अपनी खामियों को समझता हूं। डॉ. अम्बेडकर ने भी कल यहां मसौदा-समिति की खामियों को मंजूर किया है। मसौदा-समिति की सिफारिशों के खिलाफ जो बातें कही गई हैं उनका कोई सन्तोषजनक उत्तर उन्होंने नहीं दिया। हम लोगों ने इस सम्बन्ध में अगर कोई संशोधन नहीं रखा है तो सिर्फ इसीलिये कि खुद मसौदा-समिति अभी द्विविधा में पड़ी हुई है और एकमत नहीं हो पाई है। मैं देख रहा हूं माननीय मित्र जनाब सैयद सादुल्ला ने अपने प्रभावोत्पादक भाषण में मसौदा-समिति से मत-विरोध व्यक्त किया है। ऐसी हालत में मैं नहीं समझ पाता हूं कि डॉ. अम्बेडकर का समर्थन करूं या न करूं। अस्तु इस अनुच्छेद पर या अनुच्छेद 260 पर मैं और कुछ नहीं कहूंगा। अगर आप द्वारा नियुक्त यहां के सदस्यों से बनी समिति की ही सिफारिशों पर कोई अमल नहीं किया जा रहा है, तो फिर प्रांतों को क्या उम्मीद हो सकती है? वित्त आयोग तो हो सकता है कि आज से पांच या छः साल बाद अस्तित्व में आवे। अंग्रेज राजनीतिज्ञ यहां से अब चले गये हैं, पर जब कभी भी वह किसी समस्या का समाधान न निकाल पाते थे, वह भी हमेशा यही किया करते थे कि एक समिति नियुक्त कर देते थे। अगर वह समिति भी उस समस्या का समाधान न निकाल पाती थी, तो फिर एक उपसमिति नियुक्त कर दी जाती थी। भारत सरकार की या इस सभा की यह परम्परा ही नहीं है कि कठिनाइयों की जड़ को निर्मूल करने का.....

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य को प्रत्येक अनुच्छेद पर, उनके हर वाक्य पर संशोधन रखने का अधिकार प्राप्त था, पर उन्होंने तो कोई संशोधन ही नहीं रखा है।

***श्री बी. दास:** मैं अपनी गलती महसूस कर रहा हूं। पर एक स्थल पर मैंने यह सुझाव दिया था कि संविधान के प्रवर्तन में आने से 6 महीने के अन्दर भारत सरकार को संसद् में यह घोषित कर देना चाहिये कि किस आधार पर आगमों का वितरण किया जायेगा। पर कुछ ऐसा हुआ कि वह संशोधन पेश नहीं किया जा सका, क्योंकि यहां सभा में उसके लिये कोई सहानुभूतिपूर्ण वातावरण नहीं है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूं, आप पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप अपनी विशेषज्ञ समिति को आदेश दें कि मसौदा-समिति की रिपोर्ट की तथा भारत-शासन-अधिनियम 1935 की, जिसके प्रावधान आज अब तक कभी प्रवर्तन में आये ही नहीं, वह अच्छी तरह जांच करें। प्रांतों के प्रति जो कुछ हम करने जा रहे हैं, वही अगर आर्थिक न्याय है तो वज्रपात हो मेरे भाग्य पर, इस सभा के भाग्य पर और इस राष्ट्र के भाग्य पर। इस अवस्था में तो प्रत्येक पिछड़ा प्रांत उसी अनुन्नत एवं हीन दशा में पड़ा रह जायेगा जिसमें आज वह है, क्योंकि भारत सरकार का वित्त-विभाग तो अपनी पहिले की ही गतिविधि पर स्वच्छन्द चलेगा। उसका वहीं रवैया रहेगा जो सर बैसिल ब्लेकैट, सर जेम्स ग्रिग और उनके अनुवर्तियों के जमाने में था। मेरा सारा रोना, सारी मुसीबत तो इसी बात को लेकर है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): इस अनुच्छेद 255 पर चन्द बातें कहने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं, श्रीमान्। इस अनुच्छेद में यह जो प्रावधान रखा गया है कि टोटे वाले प्रांतों को सहायक अनुदान में कितनी रकम दी जाये, इसका निश्चय संसद् करेगी, मैं इसके खिलाफ हूं। मैं कोई कारण नहीं देखता हूं कि अनुच्छेद 254 में जो तरीका रखा गया है, उससे भिन्न तरीका इस अनुच्छेद 255 में क्यों रखा जाये। अनुच्छेद 254 में सहायक अनुदान की रकम को विहित करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है न कि संसद् को, क्योंकि अगर संसद को इसका अधिकार रहता है तो सदस्यगण यहां अपने दावों को लेकर सभा-भवन में कलह मचायेंगे, जिसे यहां बहुत अनुचित तथा संविधान की भावना के प्रतिकूल समझा गया। यही सोच समझकर वहां राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया और संसद् को नहीं। मेरी समझ में नहीं आता है कि यहां अनुच्छेद 255 में राष्ट्रपति को अधिकार न देकर संसद् को क्यों अधिकार दिया गया है। अगर सदस्यों के कलह की बात अनुच्छेद 254 के संबंध में अनुचित समझी गई, तो फिर अनुच्छेद 255 के संबंध में भी वह बात अच्छी नहीं कही जा सकती है। इसलिये मैं इस पक्ष में हूं कि जो तरीका 254 में रखा गया है, वहीं यहां रहना चाहिये।

मैं सभी बातें यहां साफ-साफ कर देना चाहता हूं और मन में छिपाकर कुछ नहीं रखना चाहता। मैं इस अधिकार को राष्ट्रपति को देने के जो पक्ष में हूं, उसका एक और भी कारण है। वह यह है कि हमारे मन में यह आशंका है कि एक प्रांत विशेष के बहुसंख्यक सदस्य, हो सकता है, संसद् में इस प्रश्न पर मतदान करते समय टोटे वाले प्रांतों की आवश्यकताओं का, उनके हितों का बगैर कोई ख्याल किये एक ओर झुक जाये और निर्णय वहां अल्पमत प्राप्त कमी वाले प्रांतों के हितों के प्रतिकूल हो जाये। इसलिये मैं इस बात के पक्ष में हूं कि माननीय मित्र रेवरेंड निकालस राय ने जो सुझाव दिये हैं, उन्हीं के अनुसार इस अनुच्छेद में संशोधन किया जाये। यहां इस बात को लेकर बहुत तर्क-वितर्क हुआ है कि अमुक-अमुक प्रांत का शोषण किया गया है और कमजोर प्रांतों की आवश्यकताओं की उपेक्षा की गई है। मैं इस बात को लेकर किसी भी वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता हूं। मैं अपने को शुद्ध राष्ट्रीयतावादी मानता हूं और समूचे भारत को अपना घर समझता हूं। इस नाते मैं यहां किसी भी ऐसे प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकता हूं, जो एक प्रांत के तो अनुकूल हो और अन्य किसी प्रांत के हितों के प्रतिकूल हो। मैं यह महसूस करता हूं, श्रीमान्, कि जब तक भारत सरकार की बागडोर आप जैसे महानुभाव के हाथ में हैं और राजा जी, सरदार पटेल, पंडित नेहरू और मौलाना आजाद सरीखे दिव्य-चेता व्यक्ति वहां मौजूद हैं, प्रांतों के यानी देश की समस्त जनता के हित सर्वथा सुरक्षित ही रहेंगे। इसलिये अनुच्छेद 255 में जो यह प्रावधान किया गया है कि प्रांत की आवश्यकता के अनुसार सहायक अनुदान दिया जायेगा, उससे मैं सहमत हूं। पर सहायक अनुदान की रकम निश्चित करने का अधिकार राष्ट्रपति को होना चाहिये, न कि संसद् को।

एक और बात है, जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। यह अनुच्छेद 255 सभा के समक्ष आना चाहिये था, उस समय जबकि इस बात के बारे में हम फैसला कर लेते कि जन जाति-क्षेत्रों की सरकार किस तरह गठित की जायेगी। इस अनुच्छेद का तो मतलब यह होगा कि जन जाति-क्षेत्र प्रांतों के साथ ही बंधे

रह जायेंगे और मैं इस विचार का प्रबल विरोधी हूं। मैं इस प्रस्ताव के पक्ष में जरूर हूं कि सभी जन जाति-क्षेत्रों को मिलाकर एक केन्द्र प्रशासित इकाई के रूप में कर दिया जाये। इस संबंध में मैं आसाम सरकार की राय का हवाला दूंगा। जो पुस्तिका यहां सदस्यों को वितरित की गई है, उसके पृष्ठ 12 पर आसाम सरकार की राय दी हुई है और वह यह है:–

"पिछड़े हुए प्रदेशों को जो प्रांतों के साथ कर दिया है वह एक कृत्रिम गठबंधन है और इसे समाप्त कर देना चाहिये। इन पिछड़े हुए प्रदेशों को आसाम प्रांत से अलग करके इन्हें सपरिषद् गवर्नर जनरल के एजेंट के रूप में काम करने वाले एक सपरिषद् गवर्नर के प्रशासनाधीन रख देना चाहिये और इनका सारा खर्च केन्द्रीय राजस्व पर पड़ना चाहिये। वह समय शीघ्र आ सकता है, जबकि यह सीमावर्ती प्रदेश भारत के बचाव के लिये पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश से अगर ज्यादा नहीं तो बराबर महत्व का हो जायेगा।"

साइमन कमीशन ने इस संबंध में जो राय दी थी, वह यह है:–

"यह पिछड़ा हुआ प्रदेश सर्वथा एक टोटा वाला क्षेत्र है और किसी भी प्रांतीय विधान-मंडल को न तो कभी यह इच्छा ही हो सकती है और न उनके पास साधन ही हो सकते हैं कि इन प्रदेशों की विशेष आवश्यकताओं की ओर वह खास तौर पर ध्यान दे सकें।"

मैं इस विचार के पक्ष में हूं कि सभी जन जाति-क्षेत्रों को प्रांतों से अलग कर देना चाहिये। मैं नहीं जानता कि इन क्षेत्रों की शासन-व्यवस्था के प्रश्न पर विचार करने के लिए कहां तक यह समय उपयुक्त है, पर अगर आपकी अनुमति हो तो जो सुझाव मैंने दिये हैं उनका कारण मैं सभा को बता दूं।

जन जाति-क्षेत्रों को प्रांतों से अलग करने के पक्ष में जो मैं हूं, इसका पहला कारण यह है कि प्रांतों की आर्थिक अवस्था बिलकुल शोचनीय है। कोई भी रकम जन-जातियों की समुन्नति के लिए ये प्रांत नहीं खर्च कर सकते हैं। माननीय मित्र श्री सादुल्ला ने अपनी मर्मस्पर्शी वक्तृता द्वारा यहां आसाम की मुसीबतों की ओर उसकी हृदय दारुण दशा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। यहां की दारुण स्थिति का मुझ पर तथा अन्य सदस्यों पर, जिन्होंने सादुल्ला साहब की वक्तृता को सुना है, बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। इस प्रांत के बजट में हमेशा कमी रहती है। यह अपने जन निवासियों के ही जीवन-स्तर को समुन्नत बनाने में समर्थ नहीं हो पाता है, जो जन-जाति के नहीं हैं। फिर इससे आप यह कैसे उम्मीद करते हैं कि जनजाति के लोगों की समुन्नति की ओर यह कोई ध्यान दे सकेगा?

मेरा यह कथन, श्रीमान् न केवल आसाम के जन जाति क्षेत्रों के लिए बल्कि अन्य सभी जनजाति क्षेत्रों के लिये भी समान रूप से लागू होता है। मैं यह महसूस करता हूं कि एक बड़े व्यापक पैमाने पर इनका शोषण किया गया है। हमें लज्जा से अपना सर झुका लेना चाहिये। प्रांतीय राजनीति की बिसात पर इन गरीब जनजातियों को मुहरों की तरह चलाया जा रहा है। मानवता की आज यह मांग है—मैं इस समस्या पर शुद्धतः मानवीय दृष्टिकोण से विचार कर रहा हूं—

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

कि इन जनजाति क्षेत्रों को हमें प्रांतों से अलग करके इन्हें एक कमिश्नर जनरल के अधीन रख देना चाहिये। मैं यह महसूस करता हूं कि इन प्रदेशों के लिए केन्द्र में एक स्वतंत्र तथा क्षमता प्राप्त प्राधिकारी रहना चाहिये और उसे रखना चाहिये ठक्कर बापा सरीखे व्यक्ति के अधीक्षण, नियंत्रण तथा निदेश के अधीन, जो इन जनजातियों के उत्थान के लिए समुचित ध्यान देने में सदा तत्पर रहेगा। मैं यह नहीं चाहता कि खुद केन्द्रीय शासन भी जनजाति क्षेत्रों के कार्यों के संबंध में हस्तक्षेप करे। यहां की समस्यायें बड़ी नाजुक हैं और इसके लिए हमें जरूरत है विशेषज्ञों के मानव विज्ञान वेताओं के, चिकित्सकों के तथा वैज्ञानिकों के सत्परामर्श और सहायता की। जहां तक कि इन जन जाति क्षेत्रों को समुन्नत करने का संबंध है, इसमें राजनीतिज्ञ और कानूननिर्माता कोई सहायता नहीं पहुंचा सकते हैं। मैं यह महसूस करता हूं कि इन सभी जन-जाति क्षेत्रों को प्रांतों से अलग करके अगर इन सबको एक इकाई के रूप में सुसंबद्ध कर दिया जाता है, तो इससे इन लोगों में अपने को एक समझने की भावना पैदा होगी और इस बात की मांग भी ये लोग चिरकाल से करते आ रहे हैं। इस देश की प्राचीनतम सन्तानें यही लोग हैं। देश के स्वतंत्र होने पर अब भारत शासन में इन्हें स्थान मिलना ही चाहिये। मैं इसे खूब समझ रहा हूं और मेरे मन में इसका पक्का विश्वास हो गया है, श्रीमान्, कि मानवता के इस विशाल शोषित समुदाय की दशा को समुन्नत बनाने के लिये अगर कोई समुचित कार्रवाई नहीं की जाती है, तो देश में एक भयंकर उथल पुथल मच जायेगी। अशांति यहां पहिले से ही वर्तमान है। राजनीति में भविष्यवक्ता बनना बड़ा खतरे का काम है, पर मुझे इस बात का निश्चय है कि आगामी चुनाव में इस समस्या का वास्तविक रूप हमारे सामने आ जायेगा। इस संबंध में हमें कोई ढील न देनी चाहिये। मैंने जो योजना सभा के समक्ष रखी है, श्रीमान् वह आत्मनिर्णय के सिद्धांत के सर्वथा अनुरूप है।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): पर मैं यह बताना चाहता हूं, श्रीमान्, कि इस आशय का कोई प्रस्ताव तो सभा के सामने है नहीं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय से इस विषय पर बोलने की मैंने अनुमति मांगी थी और उनकी चुप्पी से मैंने यही समझा कि वह बोलने की अनुमति दे रहे हैं।

***अध्यक्ष:** बोलने की अनुमति आप को अवश्य प्राप्त है, पर सिर्फ वित्त-विषयक प्रावधानों के संबंध में ही।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** इस अनुच्छेद के साथ जो परन्तुक रखा गया है, उससे इस प्रश्न का बड़ा गहरा संबंध है। हम प्रांतीय सरकारों को शक्तियां प्रदत्त कर रहे हैं, पर जनजाति क्षेत्रों की शासन व्यवस्था कैसे चलेगी, इसके बारे में अभी तक कोई निश्चय ही न कर पाये हैं। इस अनुच्छेद को स्वीकार कर लेने के बाद तो हम यह सुझाव ही नहीं दे सकते हैं कि जनजाति क्षेत्रों को प्रांतों से अलग कर देना चाहिये। हम इस बात को कह चुके हैं कि जनजाति क्षेत्रों की शासन-व्यवस्था के संबंध में निर्णय कर लेने के बाद ही हमें इस अनुच्छेद पर यहां विचार करना चाहिये था। पर चूंकि इस अनुच्छेद पर यहां पहले ही विचार किया जा रहा है, तो मेरे ख्याल में जनजाति क्षेत्रों के संबंध में जो मेरे विचार

हैं, उन्हें मुझे यहां व्यक्त कर देना चाहिये। मैंने जो यहां यह सुझाव रखा है, श्रीमान्, कि सभी जनजाति क्षेत्रों को प्रांतों से अलग करके उन्हें एक इकाई का रूप दे देना चाहिये और उसे केन्द्रीय शासन के अधीनवर्ती किसी स्वतंत्र निकाय के अधीन रख देना चाहिये। वह आत्म निर्णय के सिद्धांत के सर्वथा अनुकूल है।

***अध्यक्ष:** इस सुझाव पर उस समय विचार किया जा सकता है, जब हम अनुसूची पर विचार करने लगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** बहुत अच्छा, श्रीमान्।

***एक सदस्य:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि अब इस प्रश्न पर सभा का मत लिया जाये।

***कई सदस्य:** नहीं, नहीं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): बहस-मुबाहिसे को खत्म करने की जो असामयिक मांग की जा रही है, मैं उसका घोर विरोध करता हूं। हमारे सामने बहुत ही गंभीर समस्यायें उपस्थित हैं और हमें इनका समाधान अब यहां निकालना ही होगा। हम प्राय: इस समस्या पर विचार स्थगित करते आये हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं भी यही महसूस कर रहा हूं कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर बहस खत्म करने की मांग अन्यायपूर्ण है।

***अध्यक्ष:** बहस समाप्त करने के बारे में मैंने कभी किसी अनुचित प्रस्ताव को नहीं स्वीकार किया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जब आम तौर पर लोग यहां यही चाहते हैं कि इस प्रश्न पर बहस जारी रखी जाये, तो हमें यही समझ लेना चाहिये कि सभा इस प्रश्न पर और समय देना चाहती है। हमारे कुछ सदस्य, हो सकता है, अपने अन्य बन्धुओं से अधिक भाग्यशाली हों और मसौदा-समिति के मन की बात उन्हें मालूम हो गई हो। ऐसा मालूम पड़ता है कि मसौदा-समिति के पीछे कोई एक शक्तिशाली गिरोह है, जिसके मन्तव्यों को ही वह यहां उपस्थित करती है और उनकी ही वकालत करती है। जो भी हो, हम इतने खुशकिस्मत नहीं हैं कि मसौदा-समिति के मन की जानकारी हमें भी हो। हम यह देख रहे हैं कि यहां सभा के समक्ष प्राय: नये नये मौलिक संशोधन एकाएक मसौदा-समिति की ओर से उपस्थित कर दिये जाते हैं। हम यह महसूस करते हैं, श्रीमान्, कि आपका यह कहना सर्वथा समुचित है कि कभी-कभी यहां बे मतलब बहस होने लगती है। पर मैं यह निवेदन करूंगा, श्रीमान्, कि यहां प्राय: नये-नये विचार अकस्मात् उपस्थित कर दिये जाते हैं, जिन पर सदस्यों को विचार करने और संशोधन रखने का मौका ही नहीं मिल पाता है। संशोधनों के न होने का यह मतलब नहीं है कि सदस्यों को उन पर कोई आपत्ति नहीं है। यही कारण है कि सदस्यों को कभी-कभी मजबूर होकर वक्तृता द्वारा अपनी शिकायतों पर प्रकाश डालना पड़ता है और ऐसी अवस्था में यह अनिवार्य है कि कुछ न कुछ निरर्थक वाद-विवाद होगा ही। इसका इलाज यह है कि जो भी नये प्रस्ताव यहां रखे जायें उन पर

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

विचार करने के लिए और संशोधन रखने के लिए सदस्यों को पहिले काफी समय दे दिया जाये।

माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने जो यहां यह बात कही है कि जो अनुच्छेद परस्पर संबंधित हो, उन सबको एक साथ पेश करना चाहिये, वह एक महत्वपूर्ण बात है। ऐसा न करके किया यह जा रहा है कि मसौदा को थोड़ा-थोड़ा करके किश्तों में हमारे सामने उपस्थित किया जाता है। मसौदा-समिति तो इस रूप में चल रही है, मानो वह जादूगर हो और सदस्यगण दर्शक हों। एक करतब दिखाती है और बाकी को आस्तीन में छिपाये रहती है। पहले वह एक बात सभा के सामने रखती है और सभा उसे मान लेती है, तब अन्य संबंधित बातों को धीरे-धीरे रखती है। मसौदे पर थोड़ा-थोड़ा करके जो जो यहां रखा जा रहा है, वह एक बड़ी असुविधाजनक पद्धति है। इस रूप में तो भारत-शासन-अधिनियम पर भी विचार नहीं किया गया था, जिसे ब्रिटेन की पार्लियामेंट में बड़े-बड़े विशेषज्ञों ने पास किया था। मेरे ख्याल में अच्छा यह होगा कि मसौदा-समिति जो भी बात रखना चाहती हो, उसका पूरा खाका हमारे सामने रख दे। वैसा होने पर सदस्यगण ठीक-ठीक संशोधनों का सुझाव दे सकते हैं और बहस भी यहां ठीक रास्ते पर चल सकेगी। अन्यथा, सदस्यों के सामने कोई उपाय नहीं है और बहस में कभी-कभी मूल बात से वह बहक ही जायेंगे।

मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 255 बहुत सी बातों से संबंध रखता है, जिनमें जन-जाति क्षेत्रों का मसला भी एक है। प्रश्न के एक पहलू पर अलग से विचार करने में कोई फायदा नहीं है। समूचे प्रश्न पर हमें एक साथ विचार करना होगा। इसलिये मसौदा-समिति इस संबंध में जो कुछ प्रावधान रखना चाहती है, उसका पूर्ण चित्र सामने आ जाने पर ही हम इस पर अच्छी तरह विचार कर सकते हैं। मैं समझता हूं। मैं समझता हूं कि यह अनुच्छेद अच्छा ही है, पर मैं चाहता यह हूं कि राष्ट्रपति के हाथ में और भी शक्ति होनी चाहिये। मैं यह अपना विचार यहां व्यक्त कर चुका हूं कि केन्द्र अपने हाथ में आवश्यकता से अधिक अधिकार ले रहा है। पर अगर वह अधिकार लेता ही है, तो मैं यह चाहता हूं कि उन अधिकारों का प्रयोग राष्ट्रपति करे न कि संसद्, जो एक ऐसा निकाय होगा जहां रायें बदलती रहेंगी। मैं डॉ. अम्बेडकर के कल के इस कथन से सर्वथा सहमत हूं कि राजस्व के वितरण का काम संसद् पर छोड़ना बहुत खतरनाक होगा। संसद् में निर्णय होता है तात्कालिक मनोभाव के आधार पर और यह संभव है कि यहां कुछ प्रांत आपस में मिल जायें और संसद् ऐसा निर्णय कर दे जो उस प्रांत के हितों के लिए घातक हो, जिसको वस्तुतः कमी हो पर संसद में उसके काफी प्रतिनिधि न हों। इसलिए रेवरेंड निकल्स राय के इस संशोधन से मैं सहमत हूं कि जब तक संसद् इस संबंध में कोई विधि न बना दे, राष्ट्रपति को इस बारे में आवश्यक आदेश निकालने का अधिकार होगा। मेरी समझ से इस अनुच्छेद 255 में एक कमी जरूर है और उसे दूर करने के अभिप्राय से ही रेवरेंड निकलस राय ने अपना संशोधन रखा है। संविधान के पास होने और संसद द्वारा विधि बनाने में अवश्य ही एक लम्बा व्यवधान पड़ जायेगा। संसद को विधेयक पर विचार करने में ही काफी समय लगेगा और फिर उस पर ऊपर वाले सदन में विचार किया जायेगा। अगर दोनों में कहीं मतभेद हुआ, तो विधेयक के पास होने में और भी देर लग जायेगी। विधि विषयक जटिल प्रश्न पर निश्चय करने

में संसद को स्वाभाविक है कि कुछ समय लगेगा ही और हो सकता है, वह इस संबंध में कोई विधि ही न स्वीकार करे। इसलिये मेरा कहना यह है कि जब तक इस संबंध में संसद विधि न बनावे, तब तक के लिए राष्ट्रपति को यह अधिकार होना चाहिये कि वह जैसा उचित समझे व्यवस्था करे। मैं तो यह कहूंगा कि राष्ट्रपति को यह अधिकार रहना चाहिये कि वह स्वविवेक से यथोचित व्यवस्था करे। अगर संसद को उसका कार्य सन्तोषजनक मालूम होता है, तो बहुत संभव है कि एक कानून बनाने और राष्ट्रपति को ही इसकी शक्ति दे दे। इसलिये मैं यह कहूंगा कि रेवरेंड निकलस राय का संशोधन सर्वथा सामयिक है, उचित है और सभा को उसे स्वीकार करना चाहिये।

पर यहां इन समस्याओं पर कैसे विचार हो रहा है? मसौदा-समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर प्रायः यहां अनुपस्थित रहते हैं। वह मसौदा-समिति के वकील हैं और खुद यह समिति वकालत करती है सभा के एक शक्तिशाली वर्ग की। इस समय भी डॉ. अम्बेडकर शरीरतः यहां उपस्थित नहीं हैं और जब वह शरीर से उपस्थित रहते हैं, तो मनसा अनुपस्थित हो जाते हैं। ऐसी हालत में यह विवाद.....

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर की अनुपस्थिति की शिकायत करना माननीय सदस्य के लिए न्यायसंगत नहीं है। मेरा ख्याल है कि डॉ. अम्बेडकर प्रायः सदा ही यहां उपस्थित रहा करते हैं। इस समय भी, मुझे विश्वास है, वह सभा-भवन में ही कहीं हैं।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः जो भी हो, श्रीमान्, वह मनसा अनुपस्थित ही हैं। उनके प्रति निरादर व्यक्त करने के लिए ऐसा नहीं कह रहा हूं। मैं उनका आदर करता हूं। मुझे उनके साथ सहानुभूति है। वह एक शक्तिसंपन्न व्यक्ति हैं। बड़ी मेहनत से काम करते हैं। पर उन पर जो कार्यभार है वह बहुत ज्यादा है। शरीर से वह यहां जरूर उपस्थित हैं, पर बातचीत में व्यस्त होने के कारण मनसा वह अनुपस्थित ही हैं। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि मैं इसका यहां जिक्र कर रहा था।

बात यह है। जब तब वह बहस का जवाब नहीं देते हैं, जैसा कि आम तौर पर वह करते हैं, हमेशा की तरह नतीजा यही होगा कि संशोधन को स्वीकार करना वह नामंजूर कर देंगे और सभा उनकी बात को स्वीकार कर लेगी और संशोधन पास न होगा। इसलिए बहस को प्रभावी बनाने के लिए, मेरी समझ से यह आवश्यक है कि डॉ. अम्बेडकर बातों को ध्यान से सुनें। अवश्य ही सभा के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है कि वह उनको इसके लिए बाध्य कर सके। पर यहां हमारी बहस पर उनको कुछ ध्यान देना ही चाहिये।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): अध्यक्ष महोदय, इस वाद-विवाद में भाग लेने का मेरा कोई इरादा नहीं था, पर बिहार से आये हुए मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद की बातों के कारण मुझे अब भाग लेना पड़ रहा है। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को शामिल कर लेने पर यह संशोधन अपने ढंग पर बहुत अच्छा है। जिन प्रांतों में विस्तृत जन-जाति और अनुसूचित-क्षेत्र हैं, उनको रकम देने के लिए इस अनुच्छेद में पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। कुछ प्रांत तो इसके लिए काफी सम्पन्न हैं कि अपने पिछड़े हुए प्रदेशों के भाइयों के जीवनस्तर को समुन्नत बनाने में सहायता दे सकें, पर कुछ ऐसे भी प्रांत हैं, जो इतने सपन्न नहीं है कि उनकी सहायता कर सके। इसलिये तो इस अनुच्छेद में आवश्यक प्रावधान रख दिया गया है कि

[श्री ए.वी. ठक्कर]

ऐसे प्रांतों को रकम मिल सके। जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है यह बहुत ही अच्छा है। इस सहायता के लिए संविधान में ही जो प्रावधान कर दिया है, इसके लिए मैं सभा तथा संविधान रचयिताओं को कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

जहां तक कि इस वर्तमान प्रश्न यानी उनकी दशा को समुन्नत करने का संबंध है, वह काम संविधान-सभा के क्षेत्राधिकार के बाहर की बात है। पर यह प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है, इसलिए मैं दो एक सुझाव इसके बारे में जरूर दे दूंगा। संविधान में इस संबंध में जो प्रावधान रखे जा रहे हैं, उनसे लोग बहुत आशा लगाये बैठे हैं। गरीब प्रांत, जिनके पास धन नहीं है, जो धनाभाव में आज भूखों मर रहे हैं, केन्द्रीय सरकार से इस काम के लिए कुछ न कुछ पाने की जरूर उम्मीद रखते हैं। गरीब प्रांतों से मेरा मतलब यह है उड़ीसा और आसाम से। आसाम का प्रश्न कुछ पेचीदा है। कई मित्र उस पर बोल चुके हैं और आगे भी बोलेंगे। उड़ीसा के संबंध में अपने मित्र श्री बी. दास यहां बोल ही चुके हैं। इस संबंध में वस्तुत: जो विचाराणीय बात है वह यह है। इन प्रांतों में जन-जातियों की एक बड़ा आबादी है। उड़ीसा में 30 या 35 प्रतिशत आबादी इन जन-जातियों की है। खेद है आबादी बताने में मैंने भूल की है। उड़ीसा में इनकी आबादी 35 लाख और आसाम में करीब 24 लाख है। इस पिछड़ी हुई जनसंख्या की समुन्नति के लिए ये प्रांत कोई भी रकम खर्च करने में असमर्थ हैं। संविधान में इनकी दशा को सुधारने का वचन दिया गया है। पर इस वचन की पूर्ति के लिए जो कुछ भी हम कर सकते हैं, वह तीन वर्ष बाद ही कर सकते हैं। इसके पहिले नहीं। मैं यह अवधि बताने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं। संविधान को पूर्णत: प्रवर्तन में आने में तीन साल तो लग ही जायेंगे। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि प्रधान मंत्री तथा मंत्री-मंडल इस प्रश्न पर खूब गंभीरता और सावधानी के साथ विचार करके, अगर सभी जन-जाति क्षेत्रों के लिए नहीं तो कम से कम आसाम और उड़ीसा के जन जाति क्षेत्रों के लिए, शीघ्र कोई रकम दें।

माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यहां यह सुझाव दिया है कि भारत के सभी जन-जाति क्षेत्रों को मिलाकर उनकी एक इकाई बना देनी चाहिये। मैं नहीं कह सकता कि उनकी एक इकाई बनाकर उन्हें एक इलाके में भारत सरकार के अधीन रखना संभव हो सकेगा या नहीं। किन्तु इस सुझाव के बारे में मैं यह जरूर कहूंगा कि जन-जातियों का अहित करने के लिए ऐसे सुझाव ही सर्वोत्तम उपाय हैं। सवाल यह है कि आप उन्हें अपने में मिलना चाहते हैं या अपने से अलग करना चाहते हैं? देश की आम आबादी से उनको अलग रखना चाहते हैं या उनको अपने में मिलाकर उन्हें राष्ट्र का अंग बना लेना चाहते हैं? ऐसा सुझाव रखकर माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने ठीक नहीं किया है। हमारा यह कर्तव्य है, श्रीमान्, कि हम इन बन्धुओं को अपने में मिलाकर अपने राष्ट्रीय समाज का उन्हें एक अंग बना दें। अभी हमने उनको पृथक कर रखा है और वह आबाद हैं पहाड़ों पर घाटियों में, जो भयंकर मलेरिया वाले स्थान हैं। क्या आप उन्हें और दूर कर देना चाहते हैं? माफ कीजियेगा, ऐसे सुझाव से उनका कोई हित नहीं

हो सकता है। उनकी सेवा का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उनकी समुन्नति के लिए केन्द्रीय कोष से पर्याप्त रकम दीजिये और....

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** माननीय सदस्य क्षमा करेंगे, मैं उनकी वक्तृता में हस्तक्षेप कर रहा हूं। मेरा दृष्टिकोण क्या है, उसे मैं उन्हें साफ-साफ समझा देना चाहता हूं। मेरा मन्तव्य यह है कि भविष्य में उनके लिए क्या किया जाये, यह बात जन-जातीय बन्धुओं के भावी नेताओं पर छोड़ दी जाये। उनको इस बात की स्वतंत्रता रहनी चाहिये कि वह एक पृथक इकाई के रूप में रहना चाहते हैं या नहीं, इसका फैसला वह खुद करें।

***श्री ए.वी. ठक्करः** इनको पृथक करने का या मिलाने का सवाल ही कहां उठता है। जन-जाति क्षेत्र आपके देश में हैं और यही रहेंगे। इसलिए भारत सरकार से मैं यह अनुरोध करूंगा इन भाइयों की समुन्नति के लिए, संविधान के प्रवर्तन में आने के पहिले वह कोष दें। संविधान में कोरा कागजी वायदा कर देने से तो काम नहीं चलेगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** इस अनुच्छेद पर बोलने के पहिले, जहां तक कि सदस्यों द्वारा दिये गये विभिन्न सुझावों पर विचार करने का संबंध है, मैं माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की शिकायत का समर्थन करूंगा। यह एक तथ्य है और आशा है, आप इस पर ध्यान देंगे, श्रीमान्, कि यहां प्रायः उन संशोधनों पर और सदस्यों की उन बातों पर जो मसौदा-समिति द्वारा रखे गये सुझावों और विचारों से बिल्कुल मिलते-जुलते हुए नहीं होते हैं, मुश्किल से ही कभी कोई ध्यान दिया जाता है। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की यह शिकायत कि डॉ. अम्बेडकर प्रायः सभा भवन में उपस्थित नहीं रहते हैं और उनके विचारार्थ जो सुझाव यहां रखे जाते हैं उन पर वह ध्यान नहीं देते हैं, मेरे ख्याल में बिल्कुल सही है। हमें उनकी अनुपस्थिति पर कोई आपत्ति नहीं है, पर कुछ न कुछ प्रबंध तो इस बात का.....

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इस समय तो वह उपस्थित हैं, अनुपस्थित कहां हैं?

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर ज्यादा अर्से तक तो कभी अनुपस्थित नहीं रहे। प्रायः वह सदा यहां उपस्थित ही रहे हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं इस बात को मंजूर करता हूं, श्रीमान्, मैं यह सुझाव दे रहा था कि अगर वह नहीं उपस्थित हो सकते हैं या और किसी काम में व्यस्त रहते हैं, तो उनकी जगह सभा में कोई ऐसा व्यक्ति रहना चाहिये, जो माननीय सदस्यों की बातों पर, उनके आग्रह पर ध्यान दे सके।

मेरा ख्याल है कि मसौदा-समिति के सदस्यों पर तथा उसके सभापति पर यह खप्त सवार हो गया है कि उनके विचार बिल्कुल सही हैं और हमेशा वह यही समझते हैं कि माननीय सदस्यों के सुझावों में ऐसी कोई भी बात नहीं जो उपयोगी हो। उनके इस रुख को ठीक नहीं समझता हूं। मैं कितने ही ऐसे उदाहरण यहां उपस्थित कर सकता हूं, जबकि माननीय सदस्यों के तर्कसंगत सुझावों को, उनके समुचित संशोधनों को बिना विचार किये ही इन्होंने अमान्य ठहरा दिया है। आशा है कि इस स्थिति में सुधार किया जायगा, क्योंकि मेरी समझ से सभा में कितने

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

ही सदस्य ऐसे हैं जो इस संविधान को औरों से अधिक महत्व देते हैं और इस पर समधिक गंभीरता के साथ विचार करना चाहते हैं।

अब मैं विचाराधीन अनुच्छेद को लेता हूं। उस पर माननीय रेवरेंड निकलस राय ने जो संशोधन रखा है, उसका में समर्थन करता हूं। पर मेरे पूर्व वक्ता सदस्यों ने जिन कारणों के आधार पर इसका समर्थन किया है उनसे सर्वथा भिन्न कारणों से मैं इसका समर्थन कर रहा हूं। प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर चुनी जाने वाली भावी संसदों में अपने विश्वास के अभाव की बात कहकर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद अपनी बातों को और भी निस्सार बनाते जा रहे हैं। *(हंसी)* वह अपने ही सिद्धांतों की चर्चा अब ज्यादातर करने लग गये हैं। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है। यह हम लोगों का सौभाग्य ही है कि हमें उन विचारों को सुनने का यहां मौका मिल रहा है, जिनको वह मानते हैं और जिन पर उनका प्रबल आग्रह है। पर मैं जो रेवरेंड निकलस राय के संशोधन का समर्थन कर रहा हूं, वह इन सब कारणों के आधार पर नहीं। वस्तुतः सैद्धांतिक दृष्टि से मैं इस बाम का प्रबल विरोधी हूं, जहां तक कि राज्य के वित्तों का संबंध है, कि सारी शक्ति एक राष्ट्रपति के हाथ में दे दी जाये। प्रो. शिब्बनलाल सकसेना के इस कथन से मैं पूर्णतः सहमत हूं कि संसद के अधिकार पर किसी भी मामले में कोई अतिक्रमण न होना चाहिये। यही कारण था कि मैंने एक मूल अधिकारों को भी संविधान में स्थान देने का विरोध किया था, क्योंकि इनसे संसद की प्रभुता छिन जाती है। जब भी कोई व्यय भारतीय राजस्व पर भारित किया जाता है, तो उससे संसद के अधिकारों का अतिक्रमण होता है। अनुच्छेद 254 के मौलिक स्वरूप को बदल कर दूसरे रूप में उसे यहां पास किया गया है। इस अनुच्छेद का जो मूल मसौदा था उसको देखने पर आपको मालूम होगा कि जो शक्ति इस स्वीकृत अनुच्छेद में अब राष्ट्रपति को दी गई है, वह पहिले मूल अनुच्छेद में संसद को दी गई थी। इस अनुच्छेद का पहिले यह रूप था:–

> (इस संविधान के इस अनुच्छेद 253 में किसी बात के होते हुए भी, सन या सन की बनी हुई वस्तुओं के किसी निर्यात शुल्क की प्रत्येक साल की कुल आय का उतना अनुपात जो संसद विधि द्वारा निश्चित भारत के आगमों का भाग न बनेगा, बल्कि इत्यादि, इत्यादि।)

अब अगर डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद में परिवर्तन करके शक्ति को राष्ट्रपति के हाथ में देना ही जरूरी समझा, तो उनके लिए तर्कसंगत यही था कि सावधानी के साथ यही परिवर्तन यह अनुच्छेद 255 में कर देते। मुझे इसका पक्का विश्वास है, श्रीमान्, कि समुचित ध्यान और सावधानी के अभाव के कारण ही अनुच्छेद 255 में उपरोक्त परिवर्तन नहीं किया गया है। और फिर अनुच्छेद 254 में उक्त परिवर्तन रखने का कारण माननीय डॉ. अम्बेडकर ने क्या बताया था? मुझे उनकी बातों से बिलकुल ही संतोष नहीं हो पाया था। ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ देर के लिए उनके दिमाग में वही बात जंच गई थी जिसको व्यक्त करने में यहां माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद कभी थकते ही नहीं हैं, यानी यह बात कि भावी संसदों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। उस अनुच्छेद में परिवर्तन

करने कारण सिर्फ उन्होंने इतना ही बताया था कि उनकी समझ से वित्त विषयक प्रश्नों को संसद के निर्णय पर छोड़ना ठीक न होगा। उनके इस एकमात्र तर्क से मुझे तो बिल्कुल ही संतोष नहीं हो पाया।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैंने दो कारण बताये थे। शायद माननीय मित्र ने मेरी बात समझी नहीं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद की बातों का जवाब मैं उतनी दूर तक नहीं देना चाहता हूं, जितनी दूर तक वह चाहते हैं क्योंकि ऐसा करना मेरे प्रयोजन के लिए अनावश्यक है। मैं तो केवल उन्हीं बातों का जवाब दूंगा जिनका जवाब देना जरूरी है और प्रासंगिक है। जहां तक कि राज्य के राजस्व का उसके वितरण का संबंध है, अवश्य ही मैं नहीं चाहता हूं कि इनके संबंध में राष्ट्रपति को कोई शक्ति दी जाये, पर साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता हूं कि कोई मद भारतीय राजस्व पर भारित की जाये। यह प्रावधान तो एक विशेष और असाधारण प्रावधान है और संविधान में हमें इस तरह उदरता से सर्वत्र इसका सहारा न लेना चाहिये, क्योंकि किसी भी व्यय को भारतीय राजस्व पर भारित करने के संबंध में हम एक प्रावधान स्वीकृत अनुच्छेद 93 द्वारा कर चुके हैं जिसमें कहा गया है:–

"जितनी आगणनायें (आंके) भारत शासन के आगमों पर प्रभृत व्यय से सम्बद्ध हैं, वे संसद में मतदान के न रखी जायेगी, किन्तु.....

इसलिए जहां कहीं भी हम कोई ऐसा प्रावधान रखते हैं, जिसके द्वारा कोई व्यय संचित निधि पर भारित किया जाता है, तो उस मात्रा तक संसद अपने अधिकार से वंचित हो जाती है और मैं नहीं समझता कि भारत की संचित निधि पर भारित होने वाले व्ययों को ऐसे प्रावधान द्वारा बढ़ाना संसद की प्रतिष्ठा एवं गौरव के लिए हितकर होगा। किन्तु बावजूद इन सब बातों के जो मैंने ऊपर कहीं है, श्रीमान्, प्रस्तुत प्रावधान उन क्षेत्रों की भलाई के लिए तथा उनके सुशासन के लिए किया जा रहा है, जहां हमारे जन-जाति के अभागे बन्धु बसते हैं। ये प्रदेश इतने विस्तृत हैं और इनकी जनसंख्या भी इतनी विशाल है कि उचित यही है कि इनकी समुन्नति के लिए जो भी व्यय आवश्यक हो उसकी स्वीकृति की शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त रहनी चाहिये। भारत-शासन-अधिनियम 1935 में भी अपवर्जित क्षेत्रों की देख-रेख तथा जन-जातियों की समुन्नति का काम गवर्नर और गवर्नर को सुपुर्द किया गया था और वही स्वविवेक से इस संबंध में व्यवस्था करते थे। अगर हम इस बात से सहमत हैं कि जन-जातियों की दशा ऐसी है, जिसमें विशेष सहायता अपेक्षित ही है, तो उचित यही होगा कि डॉ. अम्बेडकर अनुच्छेद 255 के प्रावधानों में ऐसा परिवर्तन कर दें कि वह अनुच्छेद 254 के प्रावधानों के अनुरूप हो जायें, किन्तु वह तो अभी भी उठकर यह नहीं बता रहे हैं कि आया इस संशोधन को वह स्वीकार करते हैं या नहीं। आशा है कि वह ऐसी स्थिति में होंगे कि यहां रखे गये मन्तव्य का समर्थन करें। आसाम से संबंध रखने वाले इस प्रावधान से मुझे दिलचस्पी इसलिए है कि वह हमारे देश का एक महत्वपूर्ण सीमावर्ती प्रदेश है और आज कई वर्षों से वह अर्थाभाव से पीड़ित है। इस मामले में व्यक्तिगत रूप से मैं इतनी दिलचस्पी इसलिए भी ले रहा हूं कि मेरे अपने प्रांत में—मध्य प्रांत और बरार में—भी जन-जातियों का एक विस्तृत क्षेत्र है और उनकी एक विशाल

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

आबादी है। हमारे प्रांत की कुल आबादी है 1 करोड़ 96 लाख, जिसमें 44 लाख 39 हजार यानी करीब 22 प्रतिशत आबादी है जन-जातियों की। इसके अलावा मुझे देश के पिछड़े हुए दलित और सताये हुए वर्ग से सदा ही सहानुभूति रही है और इनकी समुन्नति के लिए मैंने सदा प्रयास किया हैं सुतरां इस दृष्टि से भी मैं यह हार्दिक अनुरोध करता हूं कि आसाम प्रांत को जहां तक शक्य हो सके, अधिक से अधिक सहायता दी जाये। इसलिए आशा करता हूं कि यह समुचित संशोधन, जो ऐसा मालूम पड़ता है कि डॉ. अम्बेडकर को बहुत पहिले से ही ठीक जंच गया है, वह अनुच्छेद 254 को देखते हुए उन्हें और उपयुक्त प्रतीत होगा और उसे वह स्वीकार कर लेंगे।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र रेवरेंड निकलस राय के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं। अगर उनका संशोधन मान लिया जाता है, तो उससे यह अनुच्छेद कुछ अधिक लचीला हो जायेगा। अभी जो इसका स्वरूप है, उसके अनुसार तो जब तक संसद् विधि द्वारा प्रावहित न कर दे, कोई भी रकम सहायक अनुदान के रूप में इन प्रांतों को दी नहीं जा सकती है। पर अगर रेवरेंड निकलस राय का संशोधन स्वीकृत हो जाता है, तो उसका परिणाम यह होगा कि यदि संसद विधि द्वारा इसका प्रावधान नहीं करती है, तो राष्ट्रपति आदेश द्वारा सहायक अनुदान देने की व्यवस्था करा देगा और प्रांतों को उनकी आवश्यकता के अनुसार रकम मिल जायेगी। इस अध्याय के प्रावधानों को देखने से आपको मालूम होगा, श्रीमान् कि सिवाय आयकर के अन्य जो भी कर केन्द्रीय सरकार द्वारा संग्रहीत किये जायेंगे, वह सब तब तक केन्द्रीय कोष में ही जायेंगे, जब तक कि अनुच्छेद 260 के अधीन वित्त आयोग की रिपोर्ट निकलने पर राष्ट्रपति उसके वितरण की व्यवस्था न कर दे। पर इस अन्तर्वर्ती अवधि के लिए, जब तक कि वित्त आयोग का गठन नहीं हो जाता है और वह अपनी रिपोर्ट नहीं दे देता है, राष्ट्रपति को हमें यह क्षमता देनी ही चाहिये कि वह उन प्रांतों को आर्थिक सहायता प्रदान करने की व्यवस्था कर सके जिन्हें इसकी जरूरत है। इस अनुच्छेद में जो दूसरा प्रावधान रखा गया है, वह बहुत जरूरी और उपयोगी है और बावजूद उन सारी दिक्कतों के, जिनकी कल्पना माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने की है, मैं नहीं देख पाता हूं कि अगर जनजाति-क्षेत्रों के लिए वैसी कोई दूसरी व्यवस्था की भी जाती है, जिसका सुझाव उन्होंने दिया है, तो उसमें इस प्रावधान के कारण क्या रुकावट पैदा हो सकती है। इस अनुच्छेद के एक परन्तुक में यह कहा गया है कि अगर कोई प्रांत विकास संबंधी किसी ऐसी योजना पर, जिसको उसने भारत सरकार के परामर्श या अनुमति से शुरू किया हो, कोई रकम खर्च करता है तो वह रकम उसे भारत सरकार देगी। इसी तरह दूसरे परन्तुक में यह कहा गया है कि आसाम को भारतीय राजस्व से वैसी पूंजी तथा आवर्तक राशियां दी जायेगी, जो संविधान के प्रारम्भ के पूर्व के दो वर्ष के अन्दर औसत आगम के ऊपर उसने खर्च किया है। इसलिए मैं नहीं समझ पाता हूं कि इन परन्तुकों के कारण आगे अन्य किसी प्रावधान के बनाने में क्या रुकावट पड़ सकती है। अत: मसौदा-समिति से मैं इस बात की अपील करूंगा कि माननीय रेवरेंड निकलस राय के संशोधन को वह स्वीकार करे, क्योंकि उससे समिति की योजना में कोई बाधा न पड़ेगी, बल्कि उससे लाभ यह होगा कि उनका प्रावधान अधिक लचीला बन जायेगा।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): अभी यह एक बात यहां कही गई है, श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद के प्रावधानों से संसद के अधिकारों पर अतिक्रमण होता है। मैं माननीय मित्र के इस कथन से सहमत नहीं हूं। मैं नहीं देखता कि इस प्रावधानों से संसद के अधिकारों पर भला कैसे हस्तक्षेप होता है। पहिली बात तो यह है कि प्रांतों की आर्थिक स्थिति के अनुसंधान का प्रावधान खुद संविधान में किया जा रहा है। दूसरी बात यह है कि अनुच्छेद 255 के अधीन विधेयक संसद के समक्ष उपस्थित किया जायेगा और संसद ही उसे स्वीकार करके उसको कानून का स्वरूप देगी। और फिर संसद-संविधान के अधीन खुद अपने ऊपर स्वेच्छा से यह एक परिग्रह-मूलक अध्यादेश लागू कर रही है कि अमुक-अमुक राज्यों को अमुक अमुक-रकम दी जायेगी। इसलिए जो रकम प्रांतों को दी जायेगी, वह संसद् की स्वीकृति से ही दी गई समझी जायेगी। तीसरी बात यह है कि यह यहां कह दिया गया है। यह व्यवस्था कुछ वर्षों तक के लिए ही है। सभी आवश्यक संरक्षणों को मसौदा-समिति ने यहां रख दिया है। इसलिए अपने माननीय मित्रों से जो यह मानते हैं कि उन प्रावधानों से संसद के अधिकार पर हस्तक्षेप होता है, मैं सादर निवेदन करूंगा कि ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः मैं तो यह मानता हूं, संसद में निहित अधिकारों के आधार पर ही और संसद की स्वीकृति से ही सहायक अनुदान की कोई राशि प्रांतों को मिलती है। इसलिए इस अनुच्छेद का इस आधार पर विरोध करना कि इससे संसद के अधिकारों में हस्तक्षेप होता है, बिल्कुल बेमतलब है।

इस अनुच्छेद के विरुद्ध मेरी शिकायत एक दूसरी ही है, श्रीमान्, और वह है "Scheduled tribes" और "Scheduled Area" शब्दों के प्रयोग के विरुद्ध। कई विचारों को और कई कठिनाइयों को व्यक्त करने के लिए यहां नई नई पद संहतियों का आविष्कार और प्रयोग किया गया है। किन्तु अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि विचार व्यक्त करने के लिए जितनी ही पर संहतियां निकाली जायेंगी, उनसे उतनी ही कठिनाइयां भी बढ़ती जायेंगी। "Depressed Classes" (दलित वर्ग) की जगह हमने हरिजन शब्द का प्रयोग किया, पर इससे न तो हमारी ही कठिनाई दूर हुई और न उन भाइयों की ही। हमें समय के साथ चलना होगा। हमने संविधान के मसौदे में सबके समान होने की घोषणा की है, सबको समानता प्रदान की है और कई स्थलों पर अपनी इन घोषणाओं को अमली रूप देने के लिए प्रावधान रखे हैं। ऐसी दशा में मैं नहीं समझता कि "Scheduled tribes '"Scheduled Area' (अनुसूचित जन-जातियां, अनुसूचित क्षेत्र) और इस तरह के अन्य पदसंहतियों को संविधान में क्यों स्थायी स्थान दिया जाये। इस संबंध में मेरा यह याद दिलाना असामयिक न होगा कि साम्राज्यवादी ब्रिटेन ने सन् 1898 में किस तरह चालाकी से पृथक निर्वाचन के विचार को जन्म दिया। उसके बाद मुश्किल से 11 साल गुजरे होंगे कि मिन्टो मारले योजना में इस बात पर आग्रह किया कि पृथक निर्वाचन की व्यवस्था संविधान में की जाये और इसके बाद मुश्किल से 37 साल बीते होंगे कि देश का विभाजन हो गया। इसलिए माननीय मित्रों से यहां मैं कहूंगा कि "अनुसूचित जन-जातियां" तथा "अनुसूचित क्षेत्र" जैसी नई पद संहतियों को जारी रखना आग के साथ खेलना है। वह इससे बचें। आखिर हम क्यों इस पदसंहति को संविधान में रखें? ये सभी दलित-वर्ग के लोग हैं। हमारे देश में कई दलित-वर्ग के लोग हैं। 28 से 40 तक के अनुच्छेदों में इनकी समुन्नति और संरक्षण का खास तौर पर प्रावधान किया गया है और ये अनुच्छेद ही इस प्रयोजन के लिए

[श्री विश्वनाथ दास]

पर्याप्त हैं। ये अनुच्छेद मानों पर्याप्त ही नहीं हैं जो आप इनके लिए खास तौर पर प्रावधान रख रहे हैं। इनकी समुन्नति के लिए आप संसद को ही शक्ति क्यों नहीं दे देते हैं और क्यों संसद पर विश्वास नहीं करते हैं? यहां ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन इन भाइयों की सेवा में बिता दिया है। इस देश ने ठक्कर बापा जैसे व्यक्ति को और उन जैसे त्यागी कितने ही कर्मियों को जन्म दिया है, जिन्होंने इन दलित भाइयों की सेवा को ही अपने जीवन का एकमात्र कर्तव्य मान लिया हैं। देश की सद्भावना में, संविधान द्वारा प्रदत्त संरक्षणों में आप क्यों नहीं विश्वास रखते हैं? आप क्यों इन पदसंहतियों को संविधान में रखकर इनको स्थायित्व प्रदान कर रहे हैं? मेरा तो यह विश्वास है, श्रीमान्, कि जिस तरह 'पृथक निर्वाचन' की पदसंहति का हमें कटु अनुभव हुआ है, यह पदसंहतियां भी कुछ बुरा ही परिणाम हमें दिखायेंगी।

इतना तो पिछड़ी हुई जातियों और क्षेत्रों के संबंध में मैंने कहा। अब अनुच्छेद 255 के दूसरे अंश को मैं लेता हूं। मेरा मतलब है, अनुच्छेद के परन्तुक के भाग (क) से, जो यों है:–

> "षष्ठ अनुसूची की कंडिका 19 से संलग्न सारिणी के भाग 1 में उल्लिखित जनजाति-क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में बारे में इस संविधान के प्रारम्भ से सद्य:पूर्व तीन वर्ष के आगमों से अधिक जो औसत व्यय हों।"

सद्य:पूर्व के तीन वर्षों के आगमों के ऊपर जो औसत व्यय पड़ा हो, उसके हिसाब के सहायक अनुदान की रकम दी जायेगी, श्रीमान्, पर ऐसा कैसे होगा और क्यों होगा? आसाम और उड़ीसा की अभागी सरकारों को आगम से अधिक रकम कहां से आयेगी, जिसे वह अपने अनुन्नत प्रदेशों पर खर्च करेंगे? ये सरकारें तो खुद टोटे में रहती हैं और उनकी असमर्थता और ज्ञानाभाव पर यहां ठक्कर बापा सरीखे व्यक्ति ने भी जोर दिया है, जिसने अपना सारा जीवन ही दलितों की समस्या के समाधान में बिता दिया है। जब इन प्रांतों के बजट में बचत ही नहीं हो पाती थी, तो अपने अनुन्नत प्रदेशों पर यह रकम कहां से खर्च करते? अपनी प्रशासन-व्यवस्था को ये किसी तरह चला भर लेते थे। फिर अतीत व्यय के आधार पर सहायक अनुदान देने की बात यहां क्यों रख रहे हैं? अनुच्छेद यह अंश मुझे सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होता है, श्रीमान्, और खास करके उस हालत में जबकि परन्तुक का उपखंड (ख) यहां रख दिया गया है, जिसमें कहा गया है कि "जो रकम उक्त क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन-स्तर तक उन्नत करने के प्रयोजनार्थ उक्त राज्य द्वारा भारत शासन के अनुमोदन से इत्यादि इत्यादि। इससे यह स्पष्ट है कि बिना केन्द्रीय शासन की पूर्व स्वीकृति के राज्य इस प्रयोजन के लिए कोई रकम व्यय ही न करेगा।

इस अनुच्छेद में इस अनुन्नन क्षेत्रों के विकासार्थ जो खास प्रावधान रखा गया है, श्रीमान्, इसके लिए मैं सभा का तथा मसौदा-समिति का कृतज्ञ हूं। पर सवाल यह है कि सहायक अनुदान का लाभ इन प्रांतों को मिलेगा कब से? वह उन्हें मिल सकेगा पांच साल बाद। इस अवधि को कम करने के लिए, मुझे मालूम हुआ है कि कुछ संशोधनों की सूचनाये आई हैं: मैं इस विचार का स्वागत करता हूं। संशोधन पास होने पर यह अवधि और कम ही जायेगी और इन प्रांतों को कुछ पहिले ही सहायक अनुदान मिलने लगेगा। पर जैसाकि यहां श्रद्धेय ठक्कर

बापा ने बताया है इन प्रांतों को रकम की जबरदस्त जरूरत है और वह मिलनी चाहिये उनके अभी। उनके पास ऐसे साधन हैं नहीं जिनसे वह रकम इकट्ठी कर सकें। मैं यह कहूंगा कि इसके लिए यहां हमें कुछ खास प्रावधान कर देना चाहिये या केन्द्र को इस बात की घोषणा कर देनी चाहिये कि वह शीघ्र ही इस संबंध में कोई व्यवस्था करेगा।

इन शब्दों के साथ मैं माननीय मित्र रेवरेण्ड निकलस राय के संशोधन का समर्थन करता हूं क्योंकि इससे स्थिति संभल जायेगी।

*__श्री पी.एस. नटराज पिल्ले__ (ट्रावनकोर राज्य): मैं बहस में इस समय केवल इसलिए दखल दे रहा हूं कि मैं प्रथम अनुसूची में भाग 3 की एक रियासत से आया हूं और विचाराधीन अनुच्छेद से कुछ ऐसी बातें होंगी जिनका ट्रावनकोर जैसे राज्यों पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा जिसे मैं यहां बता देना चाहता हूं।

ऐसे अनुच्छेद जिनके द्वारा केन्द्र एवं विभिन्न इकाइयों के बीच राजस्व वितरण की व्यवस्था की जाती है, वे फेडरल संविधान में बड़े ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं। संविधान के मसौदे का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें प्रथम अनुसूची में भाग 1 और भाग 3 के राज्यों में कोई अन्तर नहीं रह जाता है और हमने ऐसे अनुच्छेदों को स्वीकार किया है जिनमें भाग 1 के तथा भाग 3 के राज्यों को समान स्तर पर रखा गया है। जहां तक कि केन्द्र एवं प्रांतों के बीच वित्त-वितरण के प्रश्न का संबंध है, उसमें भी हमेशा शिकायतें रही हैं और बावजूद इस बात के इसके संबंध में कई निर्णय दिये गये पर इनका परस्पर कलह और झगड़ा अभी भी बना ही हुआ है। केन्द्र के गंभीर दायित्वों को मैं समझता हूं और यह मानता हूं कि जब तक कि केन्द्र की आय में वृद्धि न की जायेगी वह अपने प्रकार्यों के पालन में समर्थ नहीं हो सकता है। किन्तु राज्यों को भी, श्रीमान्, अपने निवासियों के भौतिक एवं नैतिक कल्याण का ख्याल रखना ही होगा और इस संबंध में उनको भी अपने प्रकार्यों का पालन करना ही होगा। इसलिए जब तक कि वित्त-विभाजन के प्रश्न पर समत्व एवं न्याय की दृष्टि से विचार कर उसको सुचारू रूप से तय नहीं किया जाता है, हम यह आशा नहीं कर सकते हैं कि जनता शांतिपूर्वक समुन्नति कर सकेगी।

भारतीय रियासतों के विलोपीकरण के फलस्वरूप जो राज्य-संघ स्थापित हुए हैं, उनमें सभी राज्य ऐसे थे जिन्हें प्रायः एक लम्बे अरसे से केन्द्रीय आय साधनों पर जैसे, आय पर, उत्पादन तथा आयात-निर्यात पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त रहा है। इन राज्यों की आर्थिक व्यवस्था तथा शासन संबंधी ढांचा इन्हीं आय साधनों पर विकसित किया गया था। अब अगर एकाएक उनसे इन साधनों को ले लिया जाता है और केवल वही आय साधन उनके पास रहने दिये जाते हैं जो कि प्रांतों को प्राप्त हैं तो फिर इनका भविष्य अन्धकार ही समझिये। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊंगा कि ट्रावनकोर रियासत की, जहां से मैं आया हूं, करीब 40 प्रतिशत आय होती है केन्द्रीय साधनों से। इस संविधान के प्रवर्तन में आते ही केन्द्रीय साधनों से उसे जो आमदनी होती है वह जाती रहेगी। इस रियासत की प्रशासन व्यवस्था आज करीब एक सौ वर्ष से भी ज्यादा अरसे में शनैःशनैः विकसित हो पाई है और इन्हीं साधनों से प्राप्त आय के बल पर ही यहां की शासन व्यवस्था

[श्री पी.एस. नटराज पिल्ले]

का निर्माण किया गया है। अब अगर इस अन्तर्वर्ती काल के लिए कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की जाती है जिससे कि उसकी प्रशासन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तो कहना होगा कि इन राज्यों का भाग्य वस्तुतः शोचनीय ही होगा।

मैं सभा के सामने कोई ऐसी बात नहीं रख रहा हूं जो बिल्कुल नई हो क्योंकि यूनियन पावर्स कमेटी ने अपनी ता. 17 अप्रैल सन् 1947 ई. की रिपोर्ट में, पैरा 2 में, यही बात कही है। पैरा 2 में यह कहा गया है:

> "उपरोक्त कई करों का आनियमन उस समझौते के द्वारा होता है जो इस संबंध में भारत सरकार तथा रियासतों के बीच हुआ है। इसलिए हमारा यह ख्याल है कि समूचे संघ में एकाएक एक तरह की कर पद्धति का लागू करना शायद संभव न हो सकेगा। इसलिए इस संबंध में हमारी सिफारिश यह है कि संघ की स्थापना के बाद एक ऐसी अवधि तक जो सबकी सहमति से निश्चित की जाये और जो 15 वर्ष से अधिक की न हो, संघ में करों की एकरूपता स्थापित करने का काम स्थगित रखा जाये और उक्त करों का राज्यों द्वारा आरोपण, संग्रह तथा विभाजन, संघ-सरकार और राज्यों के बीच हुए समझौते के अधीन किया जाये। इसलिए इस सिफारिश को कार्यान्वित करने के लिए तदनुसार एक प्रावधान संविधान में होना चाहिये।"

इस सिफारिश के अनुसार एक प्रावधान मसौदे में रखा गया है। पर मैं यह महसूस करता हूं श्रीमान् कि मसौदे में जो संशोधन किये गये हैं और जिन अनुच्छेदों को हम स्वीकार कर चुके हैं उनसे संभवतः अनुच्छेद 258 उस रूप में इस संशोधित मसौदे में न आ पायेगा जिस रूप में कि यह मूल मसौदे में रखा गया था। मसौदे का जो अब स्वरूप है उसमें प्रांत तथा रियासतें दोनों समान स्तर पर आ गये हैं। इसलिए जब तक कि कुछ आय साधन रियासतों के लिए अलग न कर दिये जायें या दस साल की या अन्य ऐसी किसी संक्रमणकालीन अवधि के लिए कोई विशेष व्यवस्था न कर दी जाये जिससे कि रियायतें अपने आय-साधनों से अपना व्यय पूरा करने में समर्थ हो सकें ये राज्य के रूप में अपने प्रकार्यों को पूरा ही नहीं कर सकती हैं। इनको पर्याप्त आर्थिक सहायता मिल सके, इसके लिए कुछ न कुछ प्रावधान संविधान में होना ही चाहिये। यह सहायता चाहे इनको अनुदान के रूप में दी जाये या आर्थिक साहाय्य के रूप में, पर मिलनी चाहिये। जिन करों के आरोपण और संग्रहण का अधिकार इन रियासतों को एक अरसे से प्राप्त रहा है, उससे वे उसी दिन से वंचित हो जायेंगी जिस दिन कि संविधान प्रवर्तन में आयेगा।

इस संबंध में सभा के समक्ष मैं यह उपस्थित कर देना चाहता हूं, श्रीमान्, कि कई रियासतों में तो शासन व्यवस्था बहुत ही प्रगतिशील हो चुकी है और जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को धीरे-धीरे पूरा करने लगी है। कुछ रियासतों में, और उदाहरण के लिए ट्रावनकोर में ही जहां से मैं आया हूं शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है और मद्य निषेध की योजना कानूनन अमल में लाई जा रही है। भूमिकर प्रांतों के लिए आय का एक खास साधन है पर इन रियासतों में भूमि पर कम से कम एक कर निर्धारित कर दिया गया है और उस कर में ऐसी कोई वृद्धि नहीं की जा सकती है जिसे दिया ही न जा सके। इस अन्तरिम अवधि

के लिए अगर कोई व्यवस्था नहीं कर दी जाती है तो इन रियायतों की दशा वस्तुतः शोचनीय ही हो जायेगी। ऐसे प्रदेश में जहां जनता अच्छी तरह शिक्षित है और राजनैतिक दृष्टि से पूर्णतः जागरूक है, अगर राज्य जनता के क्रमिक विकास की व्यवस्था करने में और उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं हो पाता है तो वहां भयंकर उपद्रव खड़े होंगे और उससे भारत की समुन्नति और समृद्धि में बाधा ही पहुंचेगी। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि मैं महसूस करता हूं जंजीर की मजबूती निर्भर करती है उसकी कड़ियों पर। अगर कड़ियां मजबूत हैं तो जंजीर का मजबूत होना लाजिमी है। अगर देश के किसी भाग में असन्तोष और उपद्रव वर्तमान हैं तो उससे जनता के हित को नुकसान ही पहुंचेगा। मैं सभा से साग्रह निवेदन करूंगा कि वह प्रश्न के इस पहले पर गंभीरतापूर्वक विचार करे।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय और जिम्मेदार सदस्यों को जिनको संविधान बनाने का काम सौंपा गया है, अतीत के अनुभवों को भी ध्यान में रखना चाहिये जिससे अतीत की त्रुटियों का इस संविधान में निराकरण किया जा सके। इसी उद्देश्य से मेरे प्रांत के तथा अन्य कई जगहों के सदस्य, पूर्ववर्ती संविधान में आसाम और उड़ीसा के साथ जो अन्याय किया गया था और उसके साथ असम व्यवहार किया गया था उस पर काफी प्रकाश डाल चुके हैं। अपने भाषण में मुझे उन सब बातों को दुहराने की कोई जरूरत नहीं है। मैं सदस्यों से केवल यही कहना चाहता हूं कि वे इस बात को याद रखें कि अनुच्छेद 253 या 254 में संशोधन रखकर हम न्याय की आशा करते थे पर हमारी वह आशा केवल दुराशा ही सिद्ध हुई और अब इस अनुच्छेद 255 में अगर संशोधन हो जाता है तो हम कुछ उम्मीद कर सकते हैं वरना वह उम्मीद भी खत्म ही समझिये। अगर इस अनुच्छेद 255 के शब्दों में कुछ हेरफेर कर दिया जाता है तब तो आसाम और उड़ीसा जैसे प्रांतों को कुछ सहायता मिल सकती है अन्यथा उनकी कोई आशा नहीं है। अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें, जरूरत वाले किसी प्रांत को सहायता दी जाये या न दी जाये यह बात निर्भर करती है संसद पर। यह जरूर है कि इस अनुच्छेद द्वारा किसी जरूरत वाले प्रांत को पर्याप्त अनुदान देने का अधिकार संसद को प्राप्त है पर संसद के लिए यह अनिवार्य नहीं ठहराया गया है कि उसे ऐसे प्रांत को अनुदान देना ही होगा। संसद में विभिन्न प्रांतों के सदस्य होते हैं और हर सदस्य इस बात के लिए वचनबद्ध रहता है या इसका आश्वासन दिये रहता है कि अपने प्रांत की चिंता वह पहले करेगा। अब अगर विभिन्न प्रांतों में कोई संघर्ष खड़ा हो जाता है तो हो सकता है संसद किसी प्रांत विशेष को अनुदान न दे या आपात की दशा में हो सकता है वह किसी प्रांत विशेष को अनुदान न देने का निर्णय करे और केवल संपन्न प्रांतों को ही अनुदान दे। ऐसी स्थिति में, मैं पूछता हूं कि बिहार, उड़ीसा और आसाम जैसे प्रांतों की जिन्हें अनुदान की जबरदस्त आवश्यकता है, क्या गति होगी? इसलिए मैं अपने उन माननीय बन्धुओं से जिन पर संविधान की रचना का भार है, वह निवेदन करूंगा कि वे इस बात पर भी ध्यान रखें कि भला उन प्रांतों को जिन्हें सभी जानते हैं कि सहायता की आवश्यकता है, संविधान से यह उम्मीद करने का अधिकार है या नहीं कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनको कुछ न कुछ अनुदान केन्द्र से मिलेगा ही? पुराने भारत-शासन अधिनियम की धारा 142 के अनुसार केन्द्र प्रांतों को सदा ही कुछ अनुदान देता रहा है। इसलिए अगर अनुच्छेद 255 में जो शब्द रखे गये हैं वे

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

केवल रूढ़ि पालन के लिए रखे गये हैं और अनुच्छेद का अभिप्राय यही है कि आवश्यकता वाले प्रांतों को अनुदान दिया ही जायेगा, तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पर अगर अनुच्छेद का मतलब यह है कि जरूरत वाले प्रांत को भी अनुदान न देने का अधिकार संसद को हो तो मैं अनुच्छेद की इस भाषा का घोर विरोध करता हूं।

इस अनुच्छेद के प्रथम परन्तुक की ओर भी मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। वित्त संबंधी समूचे अध्याय में यही परन्तुक ही एक मात्र ऐसा प्रावधान है जिससे आशा की कुछ झलक मिलती है। एक राज्य विशेष के अनुसूचित क्षेत्रों के शासन स्तर को समुन्नत करने के लिए तथा उस क्षेत्र के विकास के लिए एक रकम अनुदान के रूप में केन्द्रीय शासन को इस परन्तुक के अधीन देना ही होगा। यहां तक तो यह ठीक है पर जब आप यह कहते हैं कि अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन स्तर को उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक उन्नत करने के लिए सहायक अनुदान की अपेक्षित रकम दी जायेगी तो मेरी समझ से इसका मतलब यह हो जाता है कि वस्तुत: आप कुछ भी नहीं दे रहे हैं। अगर आसाम जैसे प्रांत के लिए जहां की आर्थिक स्थिति बड़ी हीन है, जहां एक बहुत विस्तृत क्षेत्र है जन जातियों का, आप केवल यही चाहते हैं कि अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन का स्तर उतना ही उन्नत हो जितना कि उस प्रांत के शेष क्षेत्रों का प्रशासन स्तर है, तो इसका मतलब तो यह हुआ कि आप इस प्रांत के लिए कुछ भी नहीं करना चाहते है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि अगर इस मामले में आप कुछ नहीं करते हैं तो शीघ्र ही वह समय आ रहा है जब आसाम की समूची शासन-व्यवस्था कोष के अभाव में टूट जायगी और वहां की दशा दिन-प्रतिदिन गिरती जायेगी और जब तक यह अनुच्छेद प्रवर्तन में आयेगा वहां की हालत बिल्कुल ही खराब हो जायगी। अगर आपकी आकांक्षा केवल इतनी ही है अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक उन्नत हो जाये तो मुझे कहना पड़ेगा कि आपकी आकांक्षा बड़ी तुच्छ है और आप कुछ करना नहीं चाहते हैं। इसलिए मेरा कहना यह है कि आपकी आकांक्षा यह होनी चाहिये कि अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन का स्तर देश के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक पहुंच जाये। इसलिए मैंने अपने संशोधन में यह कहा है कि "उस राज्य के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक" शब्दों की जगह "देश के शेष क्षेत्रों के प्रशासन स्तर तक" शब्द रखने चाहियें। यह बात सच है कि मेरा यह संशोधन पेश नहीं हुआ है पर इस दिशा में अगर हम कुछ करते हैं तो उस पर कोई रुकावट नहीं आती है। दूसरी बात जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं वह है दूसरे परन्तुक के उप खंड (क) के संबंध में। इसमें यह कहा गया है कि "इस संविधान के प्रारम्भ के सद्य:पूर्व दो वर्ष के आगमों से जो औसतन अधिक व्यय हुआ हो.....इत्यादि, इत्यादि....मेरा कहना यह है कि औसतन शब्द यहां न रहना चाहिये। पहले यह कहा गया था कि संविधान के प्रारम्भ के सद्य:पूर्व तीन वर्षों के आगमों से जो औसतन अधिक व्यय हुआ हो। पर अब जब तीन वर्ष की जगह आप दो वर्ष रख रहे हैं तो मेरा ख्याल है कि औसत का प्रश्न ही नहीं उठता है। यहां 'औसतन' शब्द को हटाकर केवल इतना ही कहना काफी होगा कि आगम से जो अधिक व्यय हुआ होगा उतनी रकम सहायक अनुदान में प्रांत को दी जायेगी। व्यय तो हर साल बढ़ता जा रहा है इसलिए इस साल के व्यय से आगामी साल के व्यय की कोई तुलना नहीं की जा सकती है। इसलिए 'औसतन' शब्द को हटाकर इतना ही कहना

चाहिये कि संविधान के प्रवर्तन में आने पर, आगम से जो भी अधिक व्यय प्रांत को उठाना पड़ा होगा उतनी रकम सहायक अनुदान में उसे अवश्य दी जायेगी। अगर ये दो संशोधन इस अनुच्छेद में कर दिये जाते हैं तो अनुसूचित क्षेत्रों की समुन्नति के लिए वस्तुतः संविधान में कुछ किया गया समझा जा सकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): यह अनुच्छेद 255, वस्तुतः भारतीय एक्ट का एक प्रतीक है, श्रीमान्। गरीब प्रान्त जिनके पास इतनी आमदनी नहीं है कि अपना खर्च पूरा कर सकें और अपने प्रशासन स्तर को अन्य प्रान्तों के प्रशासन स्तर तक ला सकें उनको केन्द्र से आर्थिक साहाय्य मिलना आवश्यक है। अतीत काल में केन्द्रीय सरकार की जो भी नीति रही हो किन्तु अपने इस संविधान की नीति यही है कि पूर्वकालीन नीति को अब बदल दिया जाये और इस अनुच्छेद 255 द्वारा इस बात की पुष्टि हो जाती है कि केन्द्र से इन प्रान्तों को सहायता मिलेगी। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है:

"ऐसी राशियां, जो संसद् विधि द्वारा प्रावहित करे, उन राज्यों के आगमों के सहायक अनुदान के रूप में भारत के आगमों पर प्रति वर्ष भारित होंगी, जिन राज्यों के विषय में संसद यह निश्चित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। भिन्न-भिन्न राज्यों के लिये भिन्न-भिन्न राशियां नियत की जा सकेंगी।"

हां, यह दुर्भाग्य की बात जरूर है कि अनुच्छेद में तीन स्थल पर 'may' शब्द आये हैं पर 'shall' शब्द आया है सिर्फ एक स्थल पर। वस्तुतः इस अनुच्छेद से अभावग्रस्त प्रान्तों को अधिकार नहीं प्राप्त होता है कि वह इस बात पर जोर दे सकें कि संसद उनकी साहाय्य देने का निर्णय करे ही। साहाय्य देना सर्वथा संसद की मरजी पर छोड़ा गया है। अनुच्छेद की रचना ही इस तरह की गई है कि साहाय्य देना या न देना संसद की मरजी पर निर्भर करता है।

मुझे और भी प्रसन्नता होती अगर आवश्यकता वाले प्रांतों को सहायता देना संसद के लिए अनिवार्य कर दिया गया होता। इस सम्बन्ध में पूर्वी पंजाब की स्थिति का जिक्र कर देना मेरे लिये लाजिमी है। इस अनुच्छेद के परन्तुक में अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को समुन्नत करने की बात कही गई है। किन्तु दुर्भाग्य से कुछ ऐसे भी प्रान्त हैं—इस सम्बन्ध में पूर्वी पंजाब का विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है—जिसकी आर्थिक दशा बिल्कुल बर्बाद हो गई है, जिनके आय प्रसाधन पाकिस्तान में छूट गये हैं और सुतरां उनकी आज पहिले की अपेक्षा बिल्कुल ही नगण्य हो गई है। यह स्पष्ट है, कि ऐसे प्रान्तों को जब तक केन्द्र से सहायता नहीं मिलती है उनके लिए अपनी प्रशासन व्यवस्था को चलाना बड़ा कठिन होगा क्योंकि इन प्रान्तों का प्रशासन स्तर अन्य प्रांतों के समान ही रहा है। ऐसे प्रान्तों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होना चाहिये कि वह इनको इतनी सहायता दे सके जितनी कि मंत्रि मण्डल उचित समझता हो इस उद्देश्य की तथा अन्य कई अभिप्रायों की पूर्ति के लिए रेवरेंड निकलस राय ने अपना संशोधन रखा है। मैं उनके संशोधन का समर्थन करता हूं। कोई कारण नहीं दिखाई देता कि जब तक इस सम्बन्ध में संसद द्वारा कोई कानून नहीं बनता है, तब तक अवसर के अनुसार समुचित साहाय्य प्रदान करने का अधिकार राष्ट्रपति को क्यों न दिया जाये? इसलिये इस संशोधन का मैं समर्थन करता हूं और सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सर्वप्रथम मैं डॉ. अम्बेडकर का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो इस अनुच्छेद से सम्बन्ध रखती है। इस अनुच्छेद में उन्होंने यह रखा है कि:– "ऐसी राशियां, जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे, उन राज्यों के आगमों के सहायक अनुदान के रूप में भारत के आगमों पर प्रति वर्ष भारित होंगी जिन राज्यों के विषय में संसद् यह निश्चित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है; भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न राशियां नियत की जा सकेंगी"। किन्तु अनुच्छेद 251 और 254 में मैंने इसी आशय का संशोधन रखा था और यह चाहा था कि आय का वितरण संसद द्वारा एक विधि के अधीन किया जाये। पर इसके विरुद्ध डॉ. अम्बेडकर ने यह दलील पेश की थी कि अगर वितरण संसद द्वारा विधि के अधीन किया जाता है तो संसद में वितरण सम्बन्धी प्रश्न पर अनावश्यक कलह उत्पन्न होगा। किन्तु इस अनुच्छेद में मैं देखता हूं उन्होंने "जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे" शब्द रखे हैं। यानी जो बात मैं अनुच्छेद 251 और 254 में रखना चाहता था वही बात आपने खुद यहा रखी है। अब मैं यह पूछता हूं कि संसद में वही कलह क्या इस अनुच्छेद के सिलसिले में न उठेगा? या तो इन शब्दों को यहां रखना असंगत है या फिर डॉ. अम्बेडकर के मन में कुछ बात है। जिसे वह छिपाना चाहते हैं। या यह भी हो सकता है कि मेरे संशोधनों के सम्बन्ध में उन्होंने भूल की जो उसका विरोध किया। जो भी हो मुझे प्रसन्नता है कि इस अनुच्छेद में उन्होंने मेरे सुझाये शब्दों को रखना मंजूर किया।

रेवरेन्ड निकलस राय ने जो संशोधन रखा है उसका मैं समर्थन करता हूं। माननीय श्री मुहम्मद सादुल्ला को उनकी लम्बी और प्रकाशपूर्ण वक्तृता के लिए धन्यवाद देता हूं जिसमें उन्होंने आसाम की स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। निजी तौर पर मैं भी यही महसूस करता हूं कि इस सभा ने आसाम के लिए उतनी चिन्ता नहीं व्यक्त की है जितनी कि आसाम के लिये इसे होनी चाहिये। आसाम आज हमारा सीमावर्ती प्रान्त है। गत महायुद्ध ने इसका महत्व सिद्ध कर दिया है। पर हम इसे सर्वथा दयनीय दशा में रखे हुए हैं। आसाम से प्राप्त होने वाली और चीजों को तो जाने दीजिये, चाय और पेट्रोल पर निर्यात शुल्क के जरिये केन्द्र को हर साल 12 करोड़ की आमदनी हो जाती है। इस आमदनी के केवल तीस लाख हम आसाम को देते हैं और शेष सब केन्द्र के पास रह जाता है। इतने पर भी हम यह उम्मीद करते हैं कि हमारे पूर्ववर्ती सीमा प्रान्त आसाम को हमारे बचाव के लिए एक जबरदस्त गढ़ बनना चाहिये। मेरा ख्याल है कि आसाम के बन्धुओं ने यहां अकाट्य ढंग से आसाम को साहाय्य प्रदान करने की बात का प्रतिपादन किया है और सभा को उनकी बातों पर समुचित ध्यान देना चाहिये। जो संशोधन इस सम्बन्ध में रखा गया है उसके द्वारा राष्ट्रपति को वस्तुत: इतना ही अधिकार मिलता है कि अपेक्षित साहाय्य वह सद्य: इस प्रान्त को दे सकता है। अन्यथा अगर यह शब्द यहां रहते हैं कि "जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे" तो फिर इससे यही होगा कि इस प्रान्त को साहाय्य पाने में कुछ समय लग जायेगा। हमारे आसाम के भाई यह चाहते हैं कि संविधान के स्वीकृत होते ही राष्ट्रपति आदेश द्वारा इतनी रकम दिला दे जिससे कि वह आवर्तक कमी को पूरा कर सकें और विकास सम्बन्धी कुछ योजनाओं को भी हाथ में ले सकें। रेलवे सम्बन्धी कर्मचारियों के संगठन को लेकर तथा वहां की कोयले और पेट्रोल की खानों में काम करने वाले मजदूरों के संगठन को लेकर मुझे कई बार आसाम जाने का

मौका मिला है और मैं जानता हूं कि यह प्रदेश कितना महत्वपूर्ण है। यह एक विस्तृत प्रदेश है जिसका क्षेत्रफल है करीब 50 हजार वर्ग मील और आबादी है सिर्फ 75 लाख। यहां की एक तिहाई आबादी जनजातियों की है। इस अनुच्छेद में हम इन जनजातियों की समुन्नति के लिये विशेष सहायता देने का प्रावधान कर रहे हैं। पर मैं यह महसूस करता हूं कि जनजातीय क्षेत्रों को प्रान्त के शेष क्षेत्रों के स्तर पर लाने के लिए हमें कोई पंचवर्षीय योजना अपनानी चाहिये। आज पीढ़ियों से हम इनकी अपेक्षा करते आ रहे हैं। ठक्कर बापा ने अपना समस्त जीवन ही इन लोगों की सेवा में बिता दिया है। उन्होंने इनकी दीन दशा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है और इस बात पर खुशी जाहिर की है कि संविधान में इनकी समुन्नति के लिये विशेष साहाय्य देने का प्रावधान किया जा रहा है। संघ के कोष से इनको रकम मिलनी चाहिये ताकि जनजातियों की ओर उनके क्षेत्रों की समुन्नति की जा सके और अपने स्वतंत्र लोकतंत्र में इनको समुचित स्थान मिल सके जिससे कि हमारी पूर्ववर्ती सीमा के लिए ये योग्य संरक्षक बन सकें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, बिना एक क्षण भी सोच विचार किये मैं माननीय मित्र श्री निकलस राय के संशोधन को मान लेने के लिए तैयार हूं। इस अनुच्छेद के मसौदे से शायद सदस्यों को यह धारणा हो रही है कि जब तक संसद हर वर्ष यह न निश्चय कर दे कि सहायक अनुदान के रूप में कितनी रकम दी जाये, राष्ट्रपति स्वयं कुछ नहीं कर सकता है। अवश्य ही मसौदा समिति का यह अभिप्राय नहीं है। मसौदा समिति तो यही चाहेगी कि राष्ट्रपति अनुदान प्रदान करने के बारे में जो शक्तियां उसे प्राप्त हैं उनका वह प्रयोग करे चाहे संसद भले ही अनुदान के सम्बन्ध में कोई निर्णय न कर पाई हो। इसलिये स्थिति को स्पष्ट करने के लिए, जैसा मैंने अभी कहा है, श्री निकलस राय के संशोधन को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार हूं। किन्तु इस समय मैं यह बता देना चाहता हूं कि उनके संशोधन की भाषा पर अच्छी तरह विचार करने का मुझे समय नहीं मिल पाया है। इसलिये इस शर्त के साथ कि संशोधन में अनुच्छेद 255 की भाषा के अनुरूप आवश्यक शाब्दिक हेर-फेर करने का अधिकार मसौदा समिति को रहेगा, मैं इस संशोधन को स्वीकार करने पर तैयार हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहला संशोधन है नं. 84, जो डॉ. अम्बेडकर का है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 में 'revenues of India' (भारतीय राजस्व) शब्द जहां भी आये हों उनके स्थान पर 'Consolidated Funds of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रख जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** दूसरा संशोधन है नं. 85 का जिसे डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 के प्रथम परन्तुक में 'For the time being specified in part of First Schedule' शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब संशोधन नं. 86 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 के द्वितीय परन्तुक के खण्ड (क) में 'three years' (तीन वर्ष) शब्दों की जगह 'two years' (दो वर्ष) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं रेवरेन्ड निकल्स राय के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 255 में—(क) 'Parliament may by law provide' (जो संसद विधि द्वारा प्रावहित करे) शब्दों के बाद 'or until Parliament thus provides as may be prescribed by the President' (या जब तक संसद इस तरह प्रावहित नहीं करती, राष्ट्रपति जैसा विहित करे वैसा) शब्द रखे जायें।

(ख) 'Parliament may determine' (संसद यह निश्चित करे) शब्दों के आगे 'or until Parliament determines as the President may determine' (या जब तक संसद नहीं निश्चित करती है, राष्ट्रपति जैसा निश्चित करे) शब्द रखे जायें; और

(ग) अनुच्छेद के अन्त में निम्नलिखित व्याख्या जोड़ दी जाये:–

व्याख्या–'विहित' शब्द का यहां वहीं अर्थ है जो अनुच्छेद 251 के खण्ड (4) के उपखण्ड (ख) में।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधित अनुच्छेद पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 255 अपने संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 255, अपने संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 256

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 256 को लेते हैं। छपी हुई सूची के दूसरे अंक में दिया हुआ संशोधन नं. 2925 लिया जाता है, जो डॉ. अम्बेडकर का है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमानः

"कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जायेः

(1) इस संविधान के अनुच्छेद 217 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के विधान-मण्डल की, ऐसे करों सम्बन्धी कोई विधि जो उस राज्य या किसी नगर-पालिका, जिला मण्डली, स्थानीय मण्डली अथवा उसमें अन्य स्थानीय प्राधिकारी के हित साधन के लिए वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं या नौकरियों के बारे में लागू होती है, इस आधार पर अमान्य न होगी कि वह आय पर कर है।"

उत्तरवर्ती अनुच्छेद में यह कहा गया है कि स्थानीय प्राधिकारियों को वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं या नौकरियों पर एक सीमा तक कुछ कर लगाने का अधिकार होगा। आशंका यह की जाती है कि राज्य द्वारा पेसा कोई कर अगर लगाया जाता है तो उस पर यह कहकर आपत्ति की जा सकती है कि यह तो आय पर कर लगाना है जिसका अधिकार केवल केन्द्र को है। उपखण्ड (1) में वर्णित प्रयोजन के लिये बनाई गई किसी विधि पर ऐसी कोई आपत्ति न की जा सके इसके लिए प्रस्तुत प्रावधान को रखना मसौदा समिति ने बहुत आवश्यक समझा है। तदनुसार, मैं इस संशोधन का प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन की सूचना श्री सिधवा ने दे रखी है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** उसके बाद दो संशोधन हैं ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर के। छपी हुई सूची में इनका नम्बर है 2926 और 2927। ये संशोधन पेश नहीं किये जा रहे हैं। इसके बाद आता है संशोधन नं. 2928 जो सरदार भूपेन्द्र सिंह मान के नाम में है।

***सरदार भूपेन्द्र सिंह मान** (पूर्वी पंजाब : सिख): मैं इसे नहीं पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** इसके बाद आता है संशोधन नं. 203 जो श्री सिधवा के नाम में है।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं इसे पेश नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** अब आते हैं संशोधन नं. 89 और 90 जो श्री पी.डी. हिम्मतसिंहका के नाम में हैं। वह भी इन्हें नहीं पेश कर रहे हैं। अब लिया जाता है संशोधन नं. 91 जो डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इसे मैं पेश नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अब लिया जाता है संशोधन नं. 93, जो प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम में है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (2) में 'two hundred and fifty rupees' (ढाई सौ रुपये) शब्दों की जगह दोनों स्थलों पर जहां ये शब्द आये हैं, 'one per cent, of their annual income or one thousand rupees' (उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये) शब्द रखे जाये।"

ऐसा परिवर्तन हो जाने पर अनुच्छेद का रूप यह हो जायेगा:–

'(2) The total amount payable in respect of any one person to the State or to any one municipality, district board, local board, or other local authority in the State by way of taxes on professions, trades, callings and employments shall not exceed one per cent. of their annual income or one thousand rupees per annum:

Provided that if in the financial year immediately preceding the commencement of this Constitution there was in force any State or any such municipality, board or authority, a tax on professions, trades, callings, or employments, the rate, or the maximum rate of which exceeded one per cent of their annual income or one thousand rupees per annum, such tax may continue to be devied until provision to the contrary is made by Parliament by law, and any law so made by Parliament may be made either generally or in relation to any specified States, municipalities, boards or authorities.' "

(किसी एक व्यक्ति द्वारा व्यवसाय, व्यापार वृत्तियों तथा सेवा युक्तियों के बारे में उस राज्य को अथवा उसके अंतर्गत किसी एक नगर पालिका, जिला मण्डली या स्थानीय मण्डली अथवा अन्य स्थानीय प्राधिकारी को देय करों की समस्त राशि उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये से अधिक न होगी:

पर यदि इस संविधान के प्रारम्भ के सद्य:पूर्व के आर्थिक वर्ष में किसी राज्य में अथवा किसी नगर पालिका, मण्डली या प्राधिकारी में व्यवसाय, व्यापार वृत्तियों अथवा सेवायुक्तियों पर ऐसा कर लागू था जिसकी मात्रा अथवा जिसकी अधिकतम मात्रा उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत से अथवा एक हजार रुपये सालाना से अधिक थी, जो ऐसा कर उस समय तक आरोपणीय रहेगा

जब तक कि संसद विधि द्वारा इसके प्रतिकूल प्रावधान न करे, और संसद द्वारा इस प्रकार बनाई हुई कोई विधि या तो आमतौर पर लागू होने के लिए अथवा किन्ही उल्लिखित राज्यों, नगर पालिकाओं, मण्डलियों या प्राधिकारियों के सम्बन्ध में लागू होने के लिए बनाई जायेगी।]

मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि यहां देय करों की राशि को बढ़ाकर रखा जाये। जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है उससे स्थानीय मण्डली, जिला मण्डली या नगर पालिकाओं को अपने इलाके के बाशिन्दों की आय पर कर लगाने का अधिकार मिल जाता है। वस्तुतः मैं यह चाहता हूं कि यह खण्ड (2) संविधान में होता ही नहीं। इस सम्बन्ध में एक संशोधन की सूचना आई थी और वह सूचना आई थी अपने प्रान्त के मुख्य मंत्री माननीय पंडित पन्त जैसे व्यक्ति की ओर से। उनके संशोधन का अभिप्राय यह था, और मैं भी इसी बात पर जोर देता हूं चाहता हूं कि हमारे प्रान्त के स्थानीय निकायों की आर्थिक अवस्था सर्वथा शोचनीय है। वस्तुतः उनकी आगम का सर्वथा अभाव है। हमने संविधान में केन्द्रीय शासन के लिए आगमों का प्रावधान किया है; केन्द्र और प्रांतों के बीच आगम वितरण की व्यवस्था की कोशिश कर रहे हैं पर हमने इस बात की ओर ध्यान ही नहीं दिया है कि हमारी नगर पालिकाओं, जिला मण्डलियों और स्थानीय मण्डलियों के पास कोई आय साधन हैं ही नहीं। मैं जिला गोरखपुर से आया हूं। यह जिला अभी हाल ही में दो भागों में बांट दिया गया है। पर अभी भी इस जिले की आबादी 22 लाख है। यहां की जिला मण्डली की वार्षिक आमदनी कुल 11 लाख रुपये, जिसका मतलब यह हुआ कि अपनी आबादी पर फ़ी आदमी आठ आने ही जिला मण्डली खर्च कर सकती है। क्या आप इस बात की आशा करते हैं कि कोई भी जिला मण्डली जिसके पास इतनी कम आमदनी हो वह अपने विस्तृत आबादी की भलाई के लिये कुछ कर सकती है? मैं यह अच्छी तरह समझता हूं कि हमारा केन्द्र मजबूत होना चाहिये, उसकी आर्थिक दशा सुदृढ़ होनी चाहिये। मैं यह भी ठीक समझता हूं कि हमारे प्रान्त खूब मजबूत हों और उनकी आर्थिक दशा सुदृढ़ हो। पर वास्तविक राष्ट्रीय निर्माण के कार्यों का भार तो अन्ततोगत्वा इन जिला मण्डलियों को ही लेना होगा। आप यह कह सकते हैं कि रेल पथ के निर्माण का काम, सड़कों के बनाने का काम, विश्वविद्यालयों की व्यवस्था, यह सब तो केन्द्र और प्रान्तीय सरकारें ही करेंगी। किन्तु इलाके की सफाई की, स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रबन्ध की, प्रारम्भिक शिक्षण की और सड़कों की व्यवस्था तो इन जिला मण्डलियों को ही करनी पड़ेगी। क्या आप यह सोच सकते हैं कि 11 लाख की नगण्य आय से गोरखपुर की जिला मण्डली अपनी विशाल जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है? मैं समझता हूं कि अपने जिले के सम्बन्ध में मेरा जो अनुभव है वैसा ही अनुभव सभी सदस्यों को अपने-अपने जिलों के बारे में होगा। इसलिये मैं समझता हूं अगर आप देय करों की राशि को 250 रुपये तक सीमित कर देते हैं तो वस्तुतः जिला मण्डली के एक आय, साधन को ही बन्द कर देते हैं। मेरे जिले में 23 चीनी की मिलें हैं और खासा लाभांश (Dividend) देती हैं। गत वर्ष संयुक्त प्रान्त और बिहार की चीनी की मिलों को कुल 30 करोड़ का लाभ रहा है। ऐसी सूरत में अगर जिला मण्डली इनसे एक हजार रुपये की मांग करती है तो क्या यह नाजायज है? किन्तु इस खण्ड के संविधान में रहने पर जिला मण्डली चीनी की मिलों पर कोई कर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

ही न लगा सकेगी। ये मिलें जिला मण्डली की सड़कों का उपयोग करती हैं और इन पर उसे काफी खर्च करना पड़ता है। फिर भी 250 रुपये से ज्यादा हम इन पर कर नहीं लगा सकते हैं। मैंने तो केवल इतनी ही मांग की है कि उसकी आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये तक उन पर जिला मण्डली को करारोपण का अधिकार होना चाहिये। मैंने दोनों ही बातें रखी हैं और यह इसलिये कि व्यक्ति की आय को जानना तो, शायद हो सकता है, सम्भव न हो। हमको आय कर सम्बन्धी प्राधिकारियों के सारे अधिकार तो प्राप्त न रहेंगे कि हम व्यक्ति को आय का पता लगा सकें। पर चीनी की मिलें या इस तरह अन्य कारखाने या निकारा अपना सालाना तलपट छापते हैं जिससे हमें उनकी आय का पता मिल सकता है और उस पर हम एक प्रतिशत तक कर लगा सकते हैं। व्यक्तियों के सम्बन्ध में कर को हम एक हजार रुपये तक सीमित रख सकते हैं। ऐसी व्यवस्था से जिला निकायों की आय काफी बढ़ जायेगी। वस्तुतः इस समय तो यह स्थिति है कि हम सम्पन्न व्यक्तियों पर समुचित रूप से कर नहीं लगा सकते हैं और बाध्य होकर हमें गरीबों पर ही काफी कर लगाना पड़ता है। गरीब पान वाले पर भी पांच या दस रुपये का कर लग जाता है जिसे देना उसके लिये मुश्किल है। अगर जिला निकायों की चीनी की मिलों पर और अन्य कारखानों पर या मिल मालिकों पर उनकी आय के एक प्रतिशत तक कर लगाने का अधिकार मिल जाये तो मुझे पक्का विश्वास है कि ये गरीब कर भार से मुक्त हो जायेंगे जिसका वहन करना उनके लिये कठिन ही होता है। इसलिये करों को 250 रुपये तक ही सीमित रखने का जो यह प्रावधान है, वह मेरे ख्याल में संविधान में न रहना चाहिये। अगर इस सम्बन्ध में परिसीमन मूलक कोई प्रावधान रखना जरूरी ही हो तो हमें इसे संसद पर छोड़ देना चाहिये जिस पर हमने और कितनी बातें छोड़ रखी हैं। संविधान में इस तरह का प्रावधान रखना कि जिला निकाय 250 रुपये से ज्यादा कर नहीं लगा सकते हैं, ठीक न होगा। इसलिये मसौदा समिति से मैं यह अनुरोध करूंगा कि मेरे सुझाव के अनुसार वह इसमें परिवर्तन कर दे या फिर इसे बिल्कुल रखे ही नहीं ताकि जिला-मण्डलियों को उसकी स्वतंत्रता रहे कि अपने इलाके की आवश्यकता के अनुसार वह कर लगा सकें। केन्द्रीय बजट के मातहत तो हम करोड़ों का खर्च करते हैं पर ये जिला निकाय छोटी मोटी रकमों के लिए तरस जाते हैं पर उन्हें नहीं मिल पाती हैं। असल में इन निकायों को ही धन की वास्तविक आवश्यकता है ताकि अपने इलाके के निवासियों की आवश्यकताओं की ओर वह पूरा ध्यान दे सकें और उनके लिये अच्छी सड़कों का प्रबन्ध कर सकें। जनता को इन सुविधाओं की आज बड़ी जरूरत है। हमारी सारी योजनाओं का मूल मतलब आखिर यही तो है कि ग्रामीणों को खुशहाली हासिल हो सके। पर इस प्रावधान को रखकर आप स्थानीय निकायों की राजस्व प्राप्ति से वंचित कर देंगे जबकि जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति की जिम्मेदारी इन निकायों पर रहेगी। इससे तो जनता को नुकसान होगा। इसलिये मेरी समझ में नगर पालिकाओं या जिला मण्डलियों द्वारा लगाये जाने वाले करों की राशि पर अगर संविधान में प्रतिबन्ध ही रखना है तो वह उसी रूप में होना चाहिये जैसा कि मैंने सुझाया है। यह वर्तमान प्रावधान तो ऐसा है जिससे हमारी समुन्नति में ही बाधा पड़ती है। इसमें संशोधन करना जरूरी है।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित इस अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं और मसौदा समिति को बधाई देता हूं कि उसने स्थानीय निकायों की समुचित शिकायतों को इस संशोधन के द्वारा अब दूर कर दिया है। भारत सरकार ने इन निकायों द्वारा व्यवसाय पर लगाये जाने वाले करों की राशि को 50 रुपये तक सीमित रखा था और इससे उनकी आय साधनों का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता था। देहाती क्षेत्रों में व्यवसाय-कर से आगम की कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि वहां कृषि ही लोगों का मुख्य पेशा है और मुश्किल से अन्य कोई व्यवसाय वहां ऐसा हो सकता है जिस पर कर लगाया जा सकता हो। हां, नगर पालिकायें इस कर को लगाकर कुछ आमदनी कर सकती थीं पर इस कर की राशि को अधिक से अधिक 50 रुपये तक सीमित कर देने से नगर पालिकाओं के लिये यह कर लगाना ही बेकार होगा क्योंकि उसकी लघु आय के संग्रह में उनको जो खर्च करना पड़ेगा उसको देखते हुए वह यह कर लगायेंगी ही नहीं। इसलिये 50 रुपये तक सीमित रहने से यह साधन भी उनके लिए बेकार था। इसलिये मसौदा समिति को मैं धन्यवाद देता हूं उससे अपने संशोधन के द्वारा नगर पालिकाओं की इस शिकायत को दूर कर दिया।

स्थानीय निकायों की आर्थिक स्थिति पहले से ही खराब है। उनसे जिन सेवाओं की आशा की जाती है उनकी तुलना में उनकी आय सर्वथा नगण्य है। उनके आय साधनों पर केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों ने पहिले से ही अनधिकारत: हाथ डाल रखा है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में स्थानीय निकायों की कार्यकुशलता बहुत महत्व रखती है क्योंकि इन निकायों पर ही आम नागरिकों की रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने का भार रहता है। इसलिये ऐसी कोई भी व्यवस्था जिससे इनकी आर्थिक स्थिति में समुन्नति होती हो और इस समुन्नति के फलस्वरूप इनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती हो, वह अवश्य ही अभिनन्दनीय है।

प्रो. शिब्बनलाल के संशोधन से हमें सहानुभूति अवश्य है पर हम इतनी दूर तक जाने के लिये तैयार नहीं हैं। केन्द्र एवं स्थानीय निकायों की आवश्यकताओं में हमें सन्तुलन रखना होगा और इस दृष्टि से कर की राशि को 50 से बढ़ाकर जो 250 रुपये कर दिया गया वह काफी है। इसे एक हजार तक बढ़ा देना बहुत ज्यादा होगा। यह बात जरूर है कि कोई भी व्यवस्था जिससे स्थानीय निकायों की आर्थिक स्थिति में समुन्नति होती हो वह अभिनन्दनीय ही है पर इस कर की राशि को एक हजार बढ़ा देना बहुत ज्यादा होगा। इसलिये डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा संशोधित इस अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं।

श्री आर.के. सिधवा: यह संशोधित अनुच्छेद मसौदा समिति के मूल अनुच्छेद से कहीं अधिक सुधरा हुआ है पर इसको मैं अनिच्छापूर्वक ही स्वीकार कर रहा हूं। अनिच्छापूर्वक इसलिये कह रहा हूं क्योंकि मैं यह महसूस करता हूं अपने स्थानीय निकायों को संविधान में उतना महत्व नहीं दिया गया है जितना कि उनको मिलना चाहिये। स्थानीय निकाय राष्ट्रीय सरकार की आधारशिला होते हैं। इसी के अनुसार शासन की सारी इमारत तैयार की जाती है। किन्तु अपने संविधान में हम कर यह रहे हैं कि शासन रूपी इमारत की छत की ओर तो ध्यान दे रहे हैं। पर आधार की उपेक्षा कर रहे हैं। मैं आपको विश्वास दिला

[श्री आर.के. सिधवा]

सकता हूं कि हमारी इस प्रवृत्ति से देश की जनता को सुख समृद्धि नहीं मिल सकती है। अब तक हमारे स्थानीय निकाय प्रान्तीय सरकारों की दया पर निर्भर करते थे और यद्यपि इस अनुच्छेद में और आगे के अन्य कई अनुच्छेदों में स्थानीय निकायों की आर्थिक व्यवस्था का उल्लेख किया गया है पर उनकी व्यवस्था प्रान्तीय सरकारों पर ही छोड़ दी गई है जिसका परिणाम यह हो रहा है कि स्थानीय निकायों को गम्भीर अर्थ कष्ट भुगतान पड़ रहा है जिसके फलस्वरूप ग्रामों को, नगरों को और बड़े-बड़े शहरों की स्थिति शोचनीय हो रही है। अगर जनता के लिये खुशहाली लानी हैं उनको सुखी और सम्पन्न बनाना है जिसकी कि हम प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तो इन ग्रामों और नगरों से हमें इस काम को शुरू करना होगा। किन्तु दु:ख के साथ मुझे कहना पड़ता है कि इस संविधान में इसके लिये कोई प्रावधान नहीं रखा गया है।

अधिनियम 1935 में ब्रिटिश हुकूमत ने स्थानीय निकायों के साथ बड़ा अन्याय किया था और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि कर की राशि को 50 से बढ़ाकर अब 250 रुपये कर दिया गया है। मैं तो यह चाहता हूं कि इसको बढ़ाकर 2,500 रुपये कर दिये जायें। ऐसा होने से स्थानीय निकायों को ऐसे लोगों से जो इतनी रकम कर के रूप में निकायों को आसानी से दे सकतें है काफी रकम मिल जायेगी जो गरीब जनता पर खर्च की जा सकती है। गत वर्ष अक्तूबर के महीने में स्वास्थ्य सचिवालय (Health Ministry) ने एक सम्मेलन बुलाया था जिसमें सभी प्रान्तीय सरकारों के स्थानीय स्वशासन मंत्री सम्मिलित हुए थे। वहां सबने एक राय हो यह बात कही थी कि स्थानीय निकायों को अर्थाभाव के कारण बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। उनकी आर्थिक स्थिति को सुधारना ही होगा अगर हम चाहते हैं कि जनता की वह कुछ भलाई करें। उस सम्मेलन में स्थानीय निकाय अर्थ समिति (Local Finances Committee) नाम की एक समिति गठित की गई जिसकी बैठक गत महीने में दिल्ली में हुई थी। इस समिति ने अपनी संक्रांति कालीन सिफारिशें मसौदा समिति के पास भेज दी थीं ताकि उनकी बातों पर वह विचार कर सके। इस समिति का यह ख्याल है कि कर की राशि को 250 तक सीमित रखना बहुत कम है। उसकी राय में इसको एक हजार कर देना चाहिये। मैं नहीं जानता कि मसौदा समिति ने इस समिति की सिफारिशों पर भला कहां तक विचार किया है। प्रान्तीय सरकारों के स्थानीय स्वशासन मंत्रियों ने एक मत होकर यह सिफारिशें की थीं पर मसौदा-समिति ने इन पर तो कोई ध्यान नहीं दिया और अपना निर्णय संविधान पर लादने की चेष्टा की है जिससे फायदा किसी को न पहुंचेगा। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने भी स्थानीय निकाय-सहायक अनुदान समिति (Local Bodies Grant-in-Aid Committee) नामक एक समिति बनाई थी जिसने भी अपनी संक्रांति कालीन प्रतिवेदन मसौदा समिति के पास भेजा था जिसमें यह कहा गया है:

"खण्ड (2) में व्यापार और वृत्तियों पर विशेष कर का उल्लेख किया गया है जबकि खण्ड (3) में सामान्य कर का उल्लेख किया गया है। सामान्य कर के सम्बन्ध में नगर मण्डलियों (Municipal Boards) की शक्तियों का, प्रोफेशन टैक्स लिमिटेशन एक्ट 1951 के द्वारा और भी न्यूनन कर दिया गया है। इस एक्ट में यह प्रावधान किया गया है कि प्रवर्तमान किसी विधि के किन्हीं प्रावधानों

के होते हुए भी कोई कर जो व्यक्ति द्वारा, व्यवसाय, व्यापार, वृत्तियों और सेवायुक्तियों पर प्रान्त को या किसी स्थानीय प्राधिकारी को देय हो, वह 2 अप्रैल सन् 1942 ई. से 50 रुपये वार्षिक से अधिक न लगाये जा सकेंगे।..... इस तरह प्रोफेशन टैक्स लिमिटेशन एक्ट के नियंत्रण से उसे बरी रखने में न कोई लाभ है और न कोई व्यावसायिक उपयोगिता ही। म्युनिसिपल एक्ट की धारा 128 (1) (3) के अधीन कर की जो व्यवस्था थी वह वस्तुतः आय के लिए एक लाभप्रद साधन थी। इसलिये इसकी राशि को अधिक से अधिक 50 रुपये तक जो सीमित कर दिया गया है वह न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही आपत्तिजनक है—क्योंकि इन कर विषयक सिद्धान्तों का उल्लंघन होता है जिनके अनुसार व्यक्ति पर उसकी देयता सम्बन्धी क्षमता के अनुकूल कर लगना चाहिये ताकि गरीब और अमीर पर कर का अनुपात सम बैठे—बल्कि इससे कई नगर पालिकाओं की आर्थिक स्थिति पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।"

इसलिये मेरा कहना यह है कि मसौदा समिति के प्रावधानों से स्थानीय निकायों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पायेगी। कलकत्ता कारपोरेशन कई वृत्तियों पर जिन पर भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन उसे करारोपण का अधिकार प्राप्त है, अभी पांच सौ रुपये का लाइसेंस शुल्क लगा रहा है। किन्तु इस प्रावधान के अधीन वह इस आय से वंचित हो जायेगा। कलकत्ता कारपोरेशन के प्रशासन अधिकारी का कहना है कि यहां कितनी ही ऐसी ज्वाइंट स्टाक कम्पनियां हैं जो मैनेजिंग एजेंट के रूप में सात-सात आठ-आठ औद्योगिक प्रतिष्ठानों की देखरेख करती हैं पर उन पर पांच सौ से अधिक का कर हम नहीं लगा पाते हैं और कर का बड़ा भार बिचारे कम आय वाले व्यक्तियों और व्यापारियों पर पड़ जाता है। कलकत्ता कारपोरेशन का कहना है कि इस कर की अधिक से अधिक राशि होनी चाहिये ढाई हजार रुपया और पश्चिमी बंगाल म्युनिसिपल एसोसिएशन का कहना है कि अधिक से अधिक राशि होनी चाहिये डेढ़ हजार रुपया। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि मसौदा समिति ने यहां अपने पूर्व के मसौदे पर कोई खास सुधार नहीं किया है। अपने अनुभव के आधार पर मैं यह कहूंगा कि स्थानीय निकायों के प्रति ऐसा बर्ताव न होना चाहिये क्योंकि प्रान्तीय सरकारें तो उन्हें कोष देने में यों ही सदा कृपण रहती है और यदि इनके लिये संविधान द्वारा कोई और अच्छी व्यवस्था नहीं की जाती है तो इनकी जनता की दशा कभी सुधर नहीं सकती है। प्रान्तीय सरकारों ने, जिन्हें इन निकायों का प्रशासन चलाना पड़ता है जब यह ठीक समझा है कि कर की राशि को बढ़ा देना जरूरी है तो मेरी समझ में नहीं आता है कि मसौदा समिति क्यों इतनी कृपणता कर रही है।

अपनी उपरोक्त बातों के अधीन मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहकाः** प्रो. सक्सेना के संशोधन का मैं विरोध करता हूं। इस सम्बन्ध में मेरा अपना खुद का एक संशोधन था पर मैंने उसे पेश नहीं किया क्योंकि उस पर पार्टी में विचार नहीं किया गया था। यह अनुच्छेद इस सामान्य नियम का कि आय पर कर केन्द्र द्वारा ही लगाया जा सकता है, अपवाद है। यह अपवाद स्थानीय निकायों के लाभ के लिये ही किया जा रहा है। अगर आप अनुच्छेद को गौर से पढ़ें तो देखेंगे कि उसके अनुसार व्यवसाय, व्यापार, वृत्ति और सेवायुक्तियों पर राज्य या नगर पालिका, जिला मण्डली और स्थानीय

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

मण्डलियों के लाभार्थ पर लगाया जा सकता है। इसलिये इस कर को प्रान्तीय सरकार भी लगा सकती है और स्थानीय निकाय भी लगा सकते हैं। चाहे किसी व्यवसाय, व्यापार या वृत्ति से किसी व्यक्ति को कोई आमदनी हो या न हो उसे 250 रुपये राज्य को देना पड़ेगा और स्थानीय निकाय भी, जिसके अधिकार क्षेत्र में उसका व्यवसाय या व्यापार चलता है, उससे इतनी ही रकम कर के रूप में वसूल करेगा। जिस व्यक्ति को कोई आमदनी नहीं है या बहुत कम आमदनी है उस पर कोई कर न लगना चाहिये। भारत-शासन अधिनियम में इस कर की अधिक से अधिक राशि पचास रुपये तक सीमित कर दी गई थी। प्रान्तीय सरकारों ने इस आशय का कानून बना रखा है कि किसी व्यवसाय, व्यापार या वृत्ति से जिस व्यक्ति को आय होती हो उस पर तीस रुपये कर लगाया जा सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि जिसे आयकर के रूप में तीस रुपये केन्द्रीय सरकार को देना पड़ता है उसे इतनी ही रकम प्रान्तीय सरकार को भी व्यवसाय कर के रूप में देनी पड़ती है। अब इस प्रस्तुत अनुच्छेद के आधार पर ढाई सौ रुपये उससे नगर पालिका ले सकती है और ढाई सौ प्रान्तीय सरकार ले सकती है। आयकर के रूप में केन्द्रीय सरकार को जो उसे देना पड़ता वह तो उसे देना पड़ेगा ही। इस अनुच्छेद से होता यह है कि किसी व्यक्ति को उसके व्यवसाय से, व्यापार से आमदनी होती हो या नहीं, उसे व्यवसाय कर देने के लिए बाध्य किया जा सकता है। मूल प्रावधान जिसमें इस कर की राशि को पचास रुपये तक सीमित कर दिया था वह बहुत अच्छा था। किन्तु इस संशोधन का कि आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये तक इस सम्बन्ध में स्थानीय निकायों को कर लगाने का अधिकार हो, किसी भी दशा में समर्थन नहीं किया जा सकता है संशोधन कर्ता इस बात को भूल जाते हैं कि महज इसलिये कि कोई व्यक्ति रोजगार करता है यह जरूरी नहीं है कि वह कर दे ही सकता है। हजार रुपया तो दूर रहा, हो सकता है कि वह तीस रुपया देने की भी क्षमता न रखता हो। इसलिये मैं तो यही चाहता था कि मसौदा समिति अपने संशोधन नं. 91 को ही यहां रखती जिसमें इस कर की राशि को एक सौ रुपये तक सीमित रखा गया है। पर जब उसने उसे पेश ही नहीं किया है तो कर की राशि को ढाई सौ रुपये तक सीमित करने की जो बात है वही उसे मान लेनी चाहिये।

***चौधरी रणवीर सिंह** (पूर्वी पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, इस अनुच्छेद का समर्थन करने में मुझे झिझक है। वह इसलिये कि जो संशोधन भाई शिब्बनलाल सक्सेना ने पेश किया है, मेरी समझ में वह एक प्रिंसिपल पर बेस्ड है और यदि यह न माना गया तो सबके साथ न्याय नहीं होगा। अब आजकल ऐसा है कि आम तौर पर छोटे-छोटे आदमियों के हाथ में पेशावर कर लगाना होता है वह गरीब हरिजनों से एक तरफ तो बीस बीस और चौबीस रुपये, प्रोफेशनल टैक्स के नाम से लेते हैं, हालांकि उनकी कैपेसिटी दो या तीन रुपये की भी नहीं होती है, दूसरी तरफ वह बड़े कारखानेदार जो हरिजनों से कहीं ज्यादा रुपया दे सकते हैं, पूरा हिस्सा नहीं देते। इस अनुच्छेद द्वारा दो सौ, ढाई सौ तक ही उनकी हद बांधी जा रही है। एक और बात जो मैं एक किसान होने के नाते कहना जरूरी समझता हूं वह है कि सारे किसानों से लैन्ड रेवेन्यू के अलावा जो टैक्स

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स और लोकल बाडीज के द्वारा लिया जाता है वह पंजाब में एक रुपये पर दो पैसा है, और अब उसको और बढ़ाने की कोशिश है। तो मेरी समझ में नहीं आता कि जहां इन्कम टैक्स दो हजार रुपये की आमदनी तक बिल्कुल फ्री है वहां एक बीघा तक भी लैंड रेवेन्यू फ्री नहीं है। इससे किसान घाटे में रहते हैं। चाहे उसकी एकानमिक होल्डिंग है कि नहीं, लेकिन उससे लैन्ड रेवेन्यू जरूर लिया जाता है, और उस लैंड रेवेन्यू पर फ्री रुपया दो पैसा पेशावर कर दिया जाता है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो बड़े-बड़े आदमी हैं उनसे भी उसी प्रिंसिपल पर क्यों और न लिया जाये। ढाई सौ रुपये की पाबन्दी से डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स और लोकल बाडीज की आमदनी में काफी घाटा पड़ेगा जिससे उन्हें गरीबों पर और ज्यादा टैक्स लगाना होगा, या गरीबों के भलाई के कामों को कम करना होगा। अगर उन्हें गरीबों की भलाई करनी है, और अस्पताल वगैरह बढ़ाना है तो जरूरी तौर पर उनको अमीरों के ऊपर ज्यादा टैक्स लगाना होगा, और वह तभी लग सकता है कि प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन मंजूर किया जाये और मैं समझता हूं कि यह कर का भार कोई बहुत ज्यादा भी नहीं है, इसको देखते हुए जो किसानों से लिया जाता है। लैंड रेवेन्यू का जो प्रिंसिपल है उसे देखते हुए वह बिल्कुल ज्यादा नहीं है। जबकि किसानों से एक पर्सेन्ट से भी कई पर्सेन्ट ज्यादा लिया जायेगा। इसलिये मैं इस धारा के अन्दर चाहता हूं कि शिब्बनलाल सक्सेना का संशोधन मंजूर कर लिया जाये।

बाबू रामनारायण सिंह (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सरकार की आलोचना में दी गई वक्तृताओं पर आप जो आपत्ति कर रहे हैं उससे अंशत: मैं भी सहमत हूं। किन्तु अनुभव को और वह भी कटु अनुभव को भूल जाना बड़ा कठिन है। हम देश का संविधान बना रहे हैं, श्रीमान्, मेरी अपनी धारणा तो यही थी कि सारी शक्तियां अब यहां की जनता में ग्राम में बसने वाले असंख्य नर-नारियों में निहित कर दी जायेगी। पर यहां हो क्या रहा है? सारे अधिकार केन्द्र में ही सन्निहित रखे जा रहे हैं और थोड़े बहुत बचे खुचे अधिकार प्रान्तों को दिये जा रहे हैं। हमें देखना यह है कि इतने कम अधिकार रहने पर प्रान्तों ने अब तक किया क्या है और आगे कर क्या सकते हैं। प्रो. सक्सेना ने कई संशोधनों की सूचनायें दे रखी हैं। मैं नहीं समझ पाता कि स्थानीय निकायों द्वारा लगाये जाने वाले करों की राशि को अधिक से अधिक ढाई सौ रुपये तक क्यों सीमित रखा जा रहा है? केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले करों की राशियों के बारे में तो ऐसी कोई हदबन्दी नहीं की गई है। उन्हें लाखों का कर लगाने की आजादी है पर गरीब स्थानीय निकायों के लिये ऐसा क्यों किया जाये? यह तो बहुत ही आपत्तिजनक बात है।

जब मैं यह कहता हूं कि सभी अधिकार यहां की देहाती जनता में निहित रहने चाहियें तो उससे मेरा यह मतलब नहीं है कि केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारें हों ही नहीं। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को यथा स्थान बना रहने दीजिये। उनका काम यह होना चाहिये कि वह जनता की मदद करें, उनका संगठन करें और उनको आवश्यक सलाह दें। स्थानीय निकायों के करों के सम्बन्ध में भी आप आम जनता को—ग्राम वासियों को—स्वतंत्रता नहीं देना चाहते हैं। आखिर यह क्यों? अगर आप शहर से बाहर जायें, देहातों में जायें तो आप देखेंगे कि सरकार वहां

[बाबू रामनारायण सिंह]

की जनता के लिये क्या कर रही है। आपको अच्छी सड़कें वहीं दिखाई देंगी जो केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार के पीडब्ल्यूडी की सड़कें हैं। इनकी तो ठीक ठीक संभाल की जाती है। पर जो सड़कें स्थानीय निकायों द्वारा बनवाई गई हैं उनकी दशा सदा दयनीय रहती है। उनकी न ठीक से मरम्मत हो पाती है और न देखभाल। इसका कारण यह है कि सारी रकम तो रहती है केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों के हाथ में। स्थानीय निकायों के पास इतनी रकम नहीं होती है कि वह उनको ठीक रख सकें। यह सरासर गलत तरीका है। सारी रकम होनी चाहिये स्थानीय निकायों के अधिकार में। पर वर्तमान व्यवस्था में होता यह है कि स्थानीय निकायों को भीख के रूप में थोड़ी बहुत रकम प्रान्तीय सरकार से मिलती है और प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार से सहायता के रूप में रकम मिलती है। मेरी समझ से यह तरीका ही गलत है। इस पद्धति को हमें पलट देना चाहिये। सारा कोष होना चाहिये जनता के, देहाती जनता के अधिकार में। प्रान्तीय सरकारों को रकम प्राप्त होनी चाहिये स्थानीय निकायों द्वारा अंशदान के रूप में और केन्द्रीय सरकार को रकम मिलनी चाहिये अंशदान के रूप में प्रान्तीय सरकारों के द्वारा। इस सम्बन्ध में मैं और अधिक कुछ नहीं कहूंगा, श्रीमान्। मुझे केवल इतना ही कहना है कि माननीय मित्र सक्सेना का संशोधन बिल्कुल वाजिब है। इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन का प्रबल समर्थन करता हूं और सभा से अपील करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, स्थानीय निकायों की व्यवसाय कर लगाने की शक्ति देने के सम्बन्ध में जो संशोधन डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है, उससे मुझे पूरा विश्वास है कि यहां सभी सहमत होंगे। प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन से भी जिसमें यह कहा गया है कि कर की अधिकतम राशि ढाई सौ रुपये तक न सीमित होनी चाहिये बल्कि कर दाता की आय के अनुसार होनी चाहिये, हमारा ख्याल है सभी सहमत होंगे। जैसाकि आप सभी जानते हैं संयुक्त प्रान्त में अभी हाल में एक कानून पास करके हमने प्रान्त भर में करीब 22 सौ पंचायतों की स्थापना कर दी है। इन पंचायतों को ऐसे अधिकार और प्रकार्य दिये गये हैं कि अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाये तो उससे वस्तुत: जनता को स्वराज्य ही प्राप्त हो जायेगा। आप जानते ही हैं कि अपना देश एक सुविशाल देश है और यहां चिकित्सा एवं शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का सर्वथा अभाव है। अगर ये पंचायतें या स्थानीय निकाय ठीक-ठीक अपना काम करते हैं तो इनके पास पर्याप्त कोष हो सकता है। इन पंचायतों को पर्याप्त अधिकार दिये गये हैं और आशा है ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा ये सड़कें बनवाते जायेंगे और ऐसे उद्योग धन्धों की स्थापना करते जायेंगे जिनसे वहां की जनता की सुख-समृद्धि में वृद्धि होती रहे। हमें इस बात की आशंका है कि राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी जो महान काम अब इन पंचायतों को सौंपे गये हैं वह कभी पूरे ही न हो पायेंगे अगर हमारे पास पर्याप्त कोष न होगा। इसलिये हम इस संशोधन से पूर्णत: सहमत हैं जो सभा के सामने अभी रखा गया है और जिसमें कहा गया है कि स्थानीय निकायों को अपने क्षेत्र स्थित व्यवसाय सारे व्यापारों पर कर लगाने का अधिकार होना चाहिये और कर की राशि करदाता की आय के अनुसार

ली जानी चाहिये। जैसा कि मैंने अभी कहा है, हम यही आशा करते हैं कि ये पंचायतें और स्थानीय निकाय सड़कें बनवायेंगे और अपने इलाकों में ऐसे उद्योग धन्धों के विकास की ओर पूरा ध्यान देंगे जिनसे ग्रामस्थ जनता के सुख-समृद्धि में वृद्धि हो सके। इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का और प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का भी समर्थन करती हूं जिसमें कहा गया है कि कर की राशि को ढाई सौ तक न सीमित कर देनी चाहिये बल्कि वह इतनी होनी चाहिए जो करदाता की आय का एक प्रतिशत हो।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): जो मित्र यह चाहते हैं कि कर की अधिकतम राशि को ढाई सौ तक न सीमित रखकर होना यह चाहिये कि आय के एक प्रतिशत तक व्यवसाय कर लगाया जा सके, उन्हें मेरा ख्याल है, केन्द्र की आवश्यकताओं के बारे में और केन्द्र द्वारा संग्रहीत आयकर का प्रान्तों में वितरण जिस पद्धति से होता है उसके बारे में बिल्कुल गलतफहमी हो गई है। पहिले हम इस बात को देखें कि केन्द्र को आयकर द्वारा क्या रकम प्राप्त होती है और उसका कितना अंश वह प्रान्तों को दे देता है। आयकर की संग्रहीत रकम में से प्रान्तों को दे देने के बाद केन्द्र के पास तो बहुत ही एक छोटा सा हिस्सा बच जाता है। केन्द्रीय सरकार की आय का दूसरा साधन है उत्पादन कर। इस कर की वसूली का अधिकार केन्द्र को दिया गया है और वह भी इसलिये कि देश में इस सम्बन्ध में एकरूपता रह सके। उत्पादन कर की जो आय होती है उसे केन्द्र सब अपने पास नहीं रखेगा। आयकर की तरह इसकी भी एक बड़ी राशि, वित्त-आयोग द्वारा निर्धारित किये जाने वाले सिद्धान्तों के अनुसार प्रान्तों में बांट दी जायेगी। केन्द्र के पास तो सिर्फ आयात निर्यात शुल्क की जो आय होगी वही रह जायेगी। इसलिये अगर राजस्व के विभिन्न साधनों को हम प्रान्तों को ही देते हैं तो केन्द्र के पास आय का कोई साधन ही न रह जायेगा और उसके पास कोई कोष ही न हो सकेगा। और ये मित्र लोग अपने संशोधनों के द्वारा यही करने की कोशिश कर रहे हैं। माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने जो अनुच्छेद रखा है वह एक रियायत है। आयकर केन्द्रीय राजस्व का प्रमुख साधन है और इस पर केवल केन्द्र को ही अधिकार है। व्यवसाय कर की व्यवस्था से केन्द्रीय आयकर के क्षेत्राधिकार पर अतिक्रमण होता है। वर्तमान भारत शासन अधिनियम 1935 में इस सम्बन्ध में एक प्रावधान मौजूद है, इसकी धारा 142-क में स्थानीय निकायों द्वारा लगायें जाने वाले व्यवसाय कर की अधिकतम राशि पचास रुपये तक सीमित रखी गई है। इस व्यवसाय कर की व्यवस्था से केन्द्रीय शासन पर अतिक्रमण होता है। केन्द्र आयकर के रूप में जो रकम संग्रह करता है उससे प्रान्तों को अनुदान के रूप में सहायता देता है और फिर प्रान्त नगर पालिकाओं को तथा अन्य स्थानीय निकायों को अनुदान के रूप में सहायता प्रदान करते हैं। यह बात नहीं है कि ग्राम पंचायतों और स्थानीय निकायों के पास केवल व्यवसाय कर ही एक मात्र आय का साधन है। गांवों में तो व्यवसाय कर लग नहीं सकता है क्योंकि वहां तो एक मात्र लोगों का व्यवसाय है खेती। इसलिये व्यवसाय कर की अधिकतम राशि को ढाई सौ से बढ़ाकर आय के एक प्रतिशत तक रख देना ठीक न होगा और खास करके जीवन सम्बन्धी सामग्रियों की महंगाई को देखते हुए जो पहिले से तिगुनी हो गई हैं। माननीय मित्र सक्सेना का सुझाव यह है कि इस कर की अधिकतम राशि को ढाई सौ तक सीमित न रखकर आय के एक प्रतिशत तक रख देना चाहिये। अगर यह राशि ढाई सौ तक भी रखी जाती

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

है तो आय के एक प्रतिशत के हिसाब से, अगर 25 हजार की आमदनी हो तभी किसी पर ढाई सौ का कर लगाया जा सकता है। पर क्या आप उम्मीद करते हैं कि साधारण गांवों में किसी को 25 हजार से ज्यादा आमदनी हो सकती है? इसलिये, जहां तक कि ग्रामों का सम्बन्ध है, उनका यह सुझाव कभी भी उपयोगी नहीं कहा जा सकता है। और जहां तक कि नगर पालिकाओं का सम्बन्ध है उन्हें तो प्रान्तीय शासन से ही रकम अधिकाधिक मिल सकती है जैसाकि प्रान्तीय शासनों को केन्द्रीय शासन से मिल सकता है। और केन्द्र आयकर की संग्रहीत राशि से ही इनको आर्थिक मदद दे सकता है। इसलिये ढाई सौ की जो हदबन्दी की गई है वह काफी है और अगर इसको बढ़ा दिया जाता है तो केन्द्र द्वारा आयकर के संग्रह में ही उससे बाधा पहुंचेगी। इसलिये मजबूर होकर माननीय मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन का विरोध और प्रस्तावित अनुच्छेद का समर्थन मैं करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि विस्तारपूर्वक उत्तर देने की कोई आवश्यकता है, श्रीमान। स्थिति यह है कि सभी संविधानों में राज्य के कर साधन केन्द्र और विभिन्न इकाइयों में वितरित कर दिये गये हैं। विभिन्न इकाइयों और स्थानीय निकायों के बीच कर साधनों का वितरण किस तरह हो यह राज्य पर छोड़ दिया गया है और राज्य ही विधि द्वारा उसकी व्यवस्था करते हैं क्योंकि स्थानीय प्राधिकारियों का सृजन राज्यों द्वारा ही होता है। स्थानीय निकायों को कोई पूर्ण या असीम क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त रहता है। कतिपय प्रयोजनों की सिद्धि के लिये ही इनका निर्माण किया जाता है और अगर उन प्रयोजनों का वह ठीक-ठीक पालन नहीं कर पाते हैं तो राज्य उनको भंग कर सकता है। यह एक सामान्य नियम है कि संविधान में ऐसा कोई प्रावधान न रहना चाहिये जिसमें इकाइयों के अधीनवर्ती स्थानीय निकायों के आर्थिक साधनों के बारे में व्यवस्था की गई हो। मेरा यह प्रस्तावित अनुच्छेद वस्तुत: इस नियम का अपवाद ही है। किन्तु इस बात का ख्याल रखते हुए कि हमारे यहां स्थानीय निकायों का प्रशासन ऐसे करों पर निर्भर करता है जिनको अब तक वे लगाते आये हैं यद्यपि उनका कर लगाना आयकर सम्बन्धी कानून की भावना के विरुद्ध है, मसौदा समिति स्थिति को देखते हुए अभी इस वर्तमान व्यवस्था को चालू रहने देने पर तैयार है। वस्तुत:, विशेषज्ञ समिति ने जो इस कर की अधिकतम राशि ढाई सौ की निर्धारित की थी उस पर मसौदा समिति को आपत्ति थी। मसौदा समिति में यह प्रस्ताव आया था कि इस कर की अधिकतम राशि डेढ़ सौ रुपये निर्धारित होनी चाहिये। किन्तु पुनर्विचार करने पर मसौदा समिति ने यही तय किया कि ऐसा करने की जरूरत नहीं है और वर्तमान स्थिति में इस राशि को ढाई सौ तक रखना ही ठीक है। इसलिये मेरा कहना यह है कि आय नियम का अपवाद करके ही यह व्यवस्था रखी जा रही है और सैद्धान्तिक दृष्टि से तो मैं इसके भी खिलाफ हूं। सुतरां माननीय मित्र ने इस सम्बन्ध में जो भी संशोधन रखा है उसे स्वीकार करने पर मैं कतई राजी नहीं हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन नं. 91 के स्थान पर यह संशोधन रखा जाये:

कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (2) में 'two hundred and fifty rupees' (ढाई सौ रुपये) शब्दों की जगह, दोनों स्थलों पर जहां ये शब्द आये हैं, 'one per cent, of their annual income or one thousand rupees' (उसकी वार्षिक आय के एक प्रतिशत या एक हजार रुपये) रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 256 के खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:

'(1) इस संविधान के अनुच्छेद 217 में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य के विधान-मण्डल की, ऐसे करों सम्बन्धी कोई विधि जो उस राज्य या किसी नगर पालिका, जिला मण्डली, स्थानीय मण्डली अथवा उसमें अन्य स्थानीय प्राधिकारी के हित साधन के लिए वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं या नौकरियों के बारे में लागू होती हैं, इस आधार पर अमान्य न होंगी कि वह आय पर कर है।' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 256 अपने संशोधित रूप में संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 256 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 257

(संशोधन 2929 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 247 के अन्त में 'by law' शब्द जोड़ दिये जायें।"

यह असावधानी से इतना छूट गया था।

***अध्यक्ष:** दो और संशोधन आये हैं पर डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन के बाद अब उनकी जरूरत नहीं रह जाती है।

प्रश्न यह है:–

"कि अनुच्छेद 257 के अन्त में 'by law' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 257 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 258-क

***अध्यक्ष:** अभी हम 258 को यों ही रहने देते हैं और 259 पर विचार शुरू करते हैं। नया अनुच्छेद 258-क रखने का एक संशोधन आया है श्री हिम्मतसिंहका, पाटिल तथा वर्मन की ओर से। क्या यह पेश किया जा रहा है?

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका: नहीं, श्रीमान्।

(संशोधन नं. 2938 और 2939 पेश नहीं किये गये।)

अनुच्छेद 259

(संशोधन नं. 2940 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 259 के खण्ड (1) में 'Auditor-General' (महाकेक्षक) शब्द की जगह 'Comptroller and Auditor-General' (नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक) शब्द रखे जायें।"

यह संशोधन इसलिये रख रहा हूं कि इस सभा द्वारा स्वीकृत पहिले के अनुच्छेद में इस पदाधिकारी को जो संज्ञा दी गई है वही संज्ञा इस अनुच्छेद 259 में इस पदाधिकारी की रहे।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:-

"कि अनुच्छेद 259 के खण्ड (1) में 'Auditor-General' (महाकेक्षक) शब्द की जगह 'Comptroller and Auditor-General' (नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 259, संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 259 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 260

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 260 को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2943 के स्थान पर यह संशोधन रखा जाये:-

कि अनुच्छेद 260 के खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:-

'(1) The President shall, within two years from the commencement of this Constitution and thereafter at the expiration of every fifth year or at such

earlier time as the President considers necessary, by order, constitute a Finance Commission which shall consist of a Chairman and four other members to be appointed by the President.' "

(इस संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर और तत्पश्चात् प्रत्येक पंचम वर्ष की समाप्ति पर अथवा उससे पहिले ऐसे समय पर जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझे, आदेश द्वारा एक वित्त आयोग गठित करेगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एक सभापति और चार अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा।)

इस संशोधन को उपस्थित करने का कारण यह है श्रीमान्। इसमें शक नहीं कि मूल अनुच्छेद में यह बात कही गई है कि संविधान के प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति पर वित्त-आयोग गठित किया जायेगा। किन्तु जरूरत यह महसूस की जा रही है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि वह इससे बहुत पहले भी वित्त-आयोग गठित कर सकता है। इसलिये इस संशोधन के द्वारा यह प्रावधान किया जा रहा है कि संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष की समाप्ति पर यह आयोग गठित किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** आप अपने संशोधन नं. 96 को भी इसी समय पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में 'revenues of India' (भारत के आगमों) शब्दों की जगह 'Consolidated Fund of India' (भारत की संचित निधि) शब्द रखे जायें।"

यह संशोधन महज रस्मी है।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर कई संशोधन हैं जो संशोधन-सूची में दिये हुए हैं।

(संशोधन नं. 2941, 2942, 2944, 2945, 2946, 2947, 2948, 204, 205, 97 और 98 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 115। इसे पंडित कुंजरू पेश करेंगे।

(पंडित कुंजरू सभा-भवन में उपस्थित नहीं थे।)

उन्होंने मुझसे कहा था कि वह इस संशोधन को पेश करना चाहते हैं।

(इसी समय पंडित कुंजरू ने सभा-भवन में प्रवेश किया।)

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल) : अध्यक्ष महोदय, मेरा यह प्रस्ताव है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 के (तृतीय सप्ताह) संशोधन नं. 95

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

के सम्बन्ध में, अुनच्छेद 260 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान पर यह रखा जाये:–

'(a) the distribution between the Union and the States of the net proceeds of taxes on income which are to be divided initially between them under this Chapter;

(aa) the allocation between the States of the respective shares of the net proceeds of taxes which are to be, or may be divided between the Union and the States under this Chapter;' "

[(क) संघ तथा राज्यों के बीच आयकरों के शुद्ध आगमों के, जो इस अध्याय के अधीन आरम्भ में उनमें विभाजित किया जायेगा, वितरण के बारे में;

(कक) इस अध्याय के अधीन संघ तथा राज्यों के बीच भाजित होने वाले या हो सकने वाले करों के शुद्ध आगमों के उनके अंशो का राज्यों के बीच वितरण करने के बारे में।]

जिस उपखण्ड के सम्बन्ध में मैंने यह संशोधन रखा है वह यों है श्रीमान्–

Sir, the sub-clause to which I have moved the amendment runs as follows:

"(a) the distribution between the Union and the States of the net proceeds of taxes which are to be, or may be, divided between them under this Chapter and the allocation between the States of the respective shares of such proceeds;"

(इस अध्याय के अधीन, संघ तथा राज्यों के बीच भाजित होने वाले या हो सकने वाले, करों के शुद्ध आगमों के विभाजन के विषय में, तथा ऐसे आगमों के, राज्यों के बीच उनके भागों के वितरण के विषय में।)

अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) के इस उप-खण्ड (क) के अनुसार वित्त आयोग का न केवल इतना ही कर्तव्य होगा कि वह केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच भाजित होने वाले करों के उस भाग का, जो प्रान्तों को मिलना चाहिये, प्रांतों में वितरण कर दे बल्कि उसका यह भी कर्तव्य होगा कि प्रांतों में किस सिद्धांत के आधार पर इसका वितरण किया जायेगा उसको भी वह निर्धारित कर दे। अगर मेरा संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो आयकरों के सम्बन्ध में तो स्थिति वही रहेगी जो मूल अनुच्छेद में दी हुई है पर अन्य करों के सम्बन्ध में और जो मेरे ख्याल में उत्पादन कर ही होंगे, स्थिति अवश्य कुछ बदल जायेगी। आयकरों के सम्बन्ध में मैंने स्थिति को ज्यों का त्यों रहने दिया है क्योंकि अनुच्छेद 251 में कहा गया है कि वित्त आयोग के गठित हो जाने पर, आयकरों के शुद्ध आगमों का कौन प्रतिशत भाग प्रान्तों को दिया जाये इसका विनिधान राष्ट्रपति वित्त-आयोग के परामर्श से करेगा। मैं यह स्वीकार करता हूं कि जब अनुच्छेद 251 पर यहां विचार किया जा रहा था उस समय यह बात मेरी समझ में ठीक-ठीक न आ पाई थी कि "Prescribed" (विनिहित) शब्द की जो व्याख्या रखी गई है उसका अनुच्छेद 260 पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। यह बात तो मेरे ध्यान में उस समय आई जब मैंने संविधान-सभा

के संयुक्त मंत्री एवं मसौदा बनाने वाले सज्जन की सहायता से अपने इस प्रस्तावित संशोधन का मसौदा तैयार किया। पर इस सम्बन्ध में भी मैंने एक प्रतिबन्ध रखने की कोशिश की है और वह प्रतिबन्ध यह है। शुरू में राष्ट्रपति, आयकर के आगमों का क्या प्रतिशत अंश प्रान्तों को दिया जाये और क्या केन्द्र को, इस सम्बन्ध में वित्त-आयोग से परामर्श ले सकता है पर उसके बाद वित्त आयोग को निर्धारित प्रतिशत पर स्वयं अपनी ओर से पुनरीक्षण का अधिकार न रहेगा। यदि हम अनुच्छेद 260 के इस खण्ड (3) को यों ही रहने देते हैं तो उसके अनुसार वित्त आयोग का यह कर्तव्य होगा कि केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच भाजित होने वाले करों के आगम के प्रान्तीय अंश का प्रान्तों में किस आधार पर वितरण किया जाये, इस सम्बन्ध में वह राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश दे और उसे निर्धारित प्रतिशत के सम्बन्ध में पुनर्विचार करने का अधिकार मिल जायेगा। मेरे संशोधन का अभिप्राय यह है कि वित्त-आयोग का अधिकार यही तक सीमित रहे कि प्रान्तों और केन्द्र के बीच वितरण के लिये जो प्रतिशत उसे निर्धारित करना है शुरू में एक बार कर दे पर उस पर पुनरीक्षण का उसे अधिकार न रहे। एक बार जब वह केन्द्र और प्रान्तों का अंश निर्धारित कर दे, उसके बाद फिर वित्त-आयोग को इस बारे में तब तक पुनरीक्षण का कोई अधिकार न रहेगा जब तक कि राष्ट्रपति स्वयं न इस मसले को उसके पास भेजे। यदि प्रान्तों को आगे चलकर अधिक रकम की जरूरत हो जाये, अगर उनके आवर्तक व्यय इतने बढ़ जायें कि तर्कसंगत आर्थिक कारणों के आधार पर, बड़े अनुदान की नहीं किन्तु करों की आमदनी का कोई एक निश्चित अंश केन्द्र से पाना उनके लिये जरूरी हो जाये तो उस हालत में प्रान्तों के परामर्श से उस मसले पर भारत सरकार को ही विचार करना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं अधिक नहीं कहूंगा क्योंकि जिन कारणों से मैं यह सुझाव दे रहा हूं उन पर कल यहां पर्याप्त प्रकाश डाल चुका हूं। पर मैं इस बात को जरूर दुहराऊंगा कि डॉ. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में कल जो कुछ भी कहा है उससे मैं अपनी राय में कोई परिवर्तन नहीं कर पाता हूं।

अब मैं अपने संशोधन के दूसरे अंश को लेता हूं। अगर अनुच्छेद 260 के खण्ड (3) का उपखण्ड (क) यों ही रहने दिया जाता है तो उससे यह होगा कि वित्त आयोग को इस बारे में अपनी सिफारिश देने का अधिकार होगा कि संघ के उत्पादन शुल्क की आमदनी का कितना अंश केन्द्रीय सरकार अपने पास रखे और कितना प्रान्तों को दे दे। अब जिस अनुच्छेद के द्वारा उत्पादन शुल्क के आरोपण की तथा उसकी आमदनी के, केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच वितरण की व्यवस्था की गई है वह अनुच्छेद 253। इस अनुच्छेद की इबारत में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे राष्ट्रपति के लिये यह जरूरी हो कि इस सम्बन्ध में कोई फैसला करने से पहिले वह वित्त-आयोग से परामर्श करे ही। मेरे संशोधन का दूसरा हिस्सा अगर स्वीकार कर लिया जाता है तो राष्ट्रपति को इस बारे में वित्त-आयोग से परामर्श करने का जो अधिकार है उस पर कोई असर नहीं आयेगा और वह अधिकार ज्यों का त्यों उसे प्राप्त रहेगा। इस संशोधन के स्वीकार करने से प्रान्तों

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

को तो कोई नुकसान नहीं होगा और केन्द्र को, जिले देश के महत्वपूर्ण हितों के संरक्षण का और उसकी रक्षा का दायित्व वहन करना पड़ेगा, यह लाभ होगा कि इससे वह ऐसी स्थिति में हो जायेगा कि आपात की दशा में भी वह अपने दायित्वों का सम्यक् पालन कर सकेगा। संविधान की रचना करने वालों ने इस बात को समझ करके ही कि जिस स्थिति की यहां आशंका की जा रही है वह शायद आगे चलकर जब केन्द्रीय शासन को किसी असाधारण स्थिति का सामना करना पड़ जाये, बहुत दु:खद सिद्ध हो सकती है, उन्होंने अनुच्छेद 277 को संविधान के मसौदे में स्थान दिया है जिसमें केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि आपात की अवस्था में वह अनुच्छेद 249 और 259 के किसी या सभी प्रावधानों को निलम्बित कर सकता है। अवश्य ही अनुच्छेद 277 में जो प्रावधान रखा गया है उससे केन्द्रीय शासन को बहुत ही व्यापक अधिकार मिल जाते हैं। प्रान्तों से आये प्रतिनिधि इसे आसानी से समझ सकते हैं कि यह अनुच्छेद कितना भयावह है। आपात की स्थिति में, उनको सर्वथा केन्द्रीय शासन की दया पर ही निर्भर करना पड़ेगा। इस अनुच्छेद से यह प्रकट है कि मसौदा बनाने वाले यह महसूस करते हैं कि इस अनुच्छेद के अधीन.....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** किन्तु यह अनुच्छेद अभी यहां पास कहां हुआ है?

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** इसीलिये तो मैं उसका इस समय जिक्र कर रहा हूं। उसके मंजूर हो जाने पर जिक्र करने में लाभ ही क्या है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** आखिर उसे वापस लेने का भी तो मुझे अधिकार है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** डॉ. अम्बेडकर यह फरमा रहे हैं कि उन्हें इस अनुच्छेद को वापस लेने का अधिकार है। मैं यही आशा करता हूं कि वह बुद्धिमता से काम लेंगे और इस अनुच्छेद को जरूर वापस ले लेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** कोई जरूरी नहीं है कि मैं उसे वापस ही लूं। उसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** किन्तु मैं यह समझता हूं कि यह अनुच्छेद इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को उदारतापूर्वक सौंपी हुई समूची रकम को या उसके किसी अंश को अपने पास रख सके। भारत-शासन-अधिनियम 1935 में भी उस स्थिति की कल्पना की गई है जब केन्द्रीय शासन आयकरों के आगम के उस अंश को जो प्रान्तों के लिये विनिहित कर गया हो शायद उन्हें न दे सके और इसलिये प्रान्तों के अंशों को उन्हें देने में विलम्ब करने का उन्हें अधिकार प्रावहित किया गया है। किन्तु यह अनुच्छेद 277 तो इससे भी कहीं आगे चला गया है। उस सम्भावना को ही दूर करने के लिए जिसके ख्याल से इस अनुच्छेद को संविधान में रखा जा रहा है, मेरा यह सुझाव है कि कर के आगमों का क्या अंश प्रान्तों को दिया जाये क्या केन्द्रीय

शासन को इसके विनिश्चयन में वित्त-आयोग का कोई हाथ ही न होना चाहिये। यह ऐसा मसला है जिसका फैसला केन्द्रीय शासन को प्रान्तों के परामर्श से करना चाहिये। यदि ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है तो मुझे पक्का विश्वास है कि केन्द्रीय शासन अपने महत्वपूर्ण दायित्व का समुचित रूप से पालन कर सकेगा और अपने निर्णय के औचित्य का विश्वास प्रांतों के मन में बिठा सकेगा। उस दशा में ऐसी स्थिति ही न पैदा होगी जिससे बाध्य होकर केन्द्रीय शासन को वित्त विषयक इन प्रावधानों को, जिन पर हम अब तक विचार किये हैं रद्द करना पड़े।

आस्ट्रेलिया में भी एक वित्त-आयोग की व्यवस्था है श्रीमान्। वह आयोग आज करीब 16 वर्षों से काम कर रहा है पर इसका कर्तव्य इतना ही है कि वह प्रान्तों की मांगों की छानबीन करके और उनके बजट की जांच पड़ताल करके अपनी सिफारिश भर दे कि बजट की कमी को पूरा करने के लिये या और किसी प्रयोजन के लिये प्रान्तों को इतनी रकम मिलनी चाहिये। जहां तक मैं जानता हूं उसे कामनवैल्थ सरकार को यह आदेश देने का अधिकार नहीं है कि अमुक-अमुक करों के आगमों का अमुक-अमुक अंश वह इकाइयों को दे। अभी हाल में कनाडा में भी इस बात की कोशिश की गई थी ऐसी ही व्यवस्था वहां चलाने के लिए प्रान्तों को राजी किया जाये। युद्ध के दिनों में वहां की केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तों को आयकर क्षेत्र को छोड़ देने पर राजी किया और उसे पूर्णत: अपने अधिकार में कर लिया। कनाडा के संविधान के अधीन वहां प्रान्तीय प्रयोजनों के लिए आय पर करारोपण का प्रान्तों का अधिकार है। किन्तु केन्द्रीय सरकार ने वहां आय पर इतना ज्यादा कर लगा रखा है कि प्रान्तों के लिये इसकी कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई है कि वह इस क्षेत्र में प्रवेश करे। कनाडा की केन्द्रीय सरकार ने यह सुझाव दिया था कि प्रान्तों को एक वित्त-आयोग की नियुक्ति पर सहमत हो जाना चाहिये और वह आयोग प्रान्तों की आवश्यकताओं का ख्याल रखते हुए इस बात की सिफारिश करेगा कि उन्हें नियत कालिक अनुदान में क्या रकम मिलनी चाहिये। किन्तु इस बारे में प्रान्तों और केन्द्र के बीच जो विचार-विमर्श हुआ उसमें न तो कभी केन्द्रीय शासन की ओर से और प्रान्तों की ही ओर से यह सुझाव रखा गया कि प्रस्तावित वित्त-आयोग को यह अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि वह केन्द्रीय शासन को यह आदेश दे सके कि आयकर के आगम का अमुक अंश वह प्रान्तों को दे। वहां सिर्फ इतना ही कहा गया था कि उस बात पर विचार करके कि प्रान्तों की समुचित आवश्यकतायें क्या हैं, वित्त-आयोग को केवल ऐसी सिफारिश दे देनी चाहिये जिससे प्रान्तों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। यह जरूर है कि कनाडा में इस सम्बन्ध में प्रान्तों और केन्द्र के बीच कोई समझौता न हो सका पर इससे मेरे द्वारा रखे गये तर्कों के बल पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

मैं नहीं समझता श्रीमान्, कि इस सम्बन्ध में मुझे और कुछ कहने की जरूरत है। अनुच्छेद 251 के अधीन आयकर के वितरण के सम्बन्ध में तो हम वित्त आयोग को निर्णय का अधिकार दे ही चुके हैं पर उत्पादन शुल्क के आगम का वितरण प्रान्तों और केन्द्र में किस तरह हो इसके निर्णय का भार वित्त-आयोग को सौंपना कदापि वांछनीय न होगा और इस अवांछनीयता को व्यक्त करने के लिए मैं बहुत कुछ कह चुका हूं। वित्त-आयोग शुरू में तो यह निर्णय दे दे कि

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

आयकर के आगमों का कितना प्रतिशत प्रान्तों को दिया जाये और कितना केन्द्र के पास रहे पर मेरी राय में यह कदापि वांछनीय नहीं है कि उस निर्धारित प्रतिशत पर आगे चलकर पुनरीक्षण का उसे अधिकार रहे। और उपायों से, और समधिक ठोस उपायों से भी प्रान्तों की आवश्यकताओं की पूर्ति हम कर सकते हैं।

***श्री बी. दास:** माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थिति किये संशोधन को स्वीकार तो मैं करता हूं श्रीमान्, पर बड़ी अनिच्छा से। संस्कृत में एक श्लोक है:

सर्वनाशे समापन्ने अर्ध त्यजति पंडित:

मेरे संस्कृत में अगर कोई गलती हो तो माननीय मित्र कामत उसे ठीक कर दें। इसका मतलब यह है कि सर्वनाश की स्थिति में बुद्धिमान आदमी आधा बचा कर ही सन्तोष कर लेता है। सन् 1924 से लेकर अब तक के अपने प्रमादमय जीवनकाल में केन्द्रीय शासन ने अपने ही स्वार्थों का साधन करने वाली आर्थिक नीति अपनाकर प्रान्तों के विकास एवं समुन्नति का सर्वथा हनन ही किया है। अब यह कहा जाता है कि संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर वित्त-आयोग अपना प्रकार्य करने लग जायेगा। पर यहां भी सरकार कमेटी की सिफारिशों के प्रतिकूल ही काम किया गया है। सरकार कमेटी कि सिफारिश यह रही है कि वित्त आयोग की नियुक्ति फौरन हो जानी चाहिये। हां, डॉ. अम्बेडकर ने यह जरूर कहा है कि अभी एक तदर्थ समिति (Ad hoc Committee) कि नियुक्ति कर दी जायेगी जो आय के सम्बन्ध में प्रान्तों एवं केन्द्रीय शासन की स्थिति का अनुसंधान करेगी और अनुन्नत प्रान्तों की तात्कालिक समुन्नति के लिये कुछ रकम वह उन्हें अभी दे सकती है। सिवाय इसके कि सभा भवन में प्रसंगात तदर्थ समिति का जिक्र कर दिया गया है, बाकायदा इसके लिये यहां कोई घोषणा नहीं की गई है। इसलिये मैं यह आशा करता हूं कि केन्द्र एवं प्रान्तों के बीच वित्त वितरण की इन व्यवस्थाओं पर विचार समाप्त करने के पूर्व ही यहां तदर्थ समिति की स्थापना के सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित घोषणा जरूर की जायेगी।

डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर जो संशोधन माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने पेश किया है श्रीमान्, उसका मैं हार्दिक समर्थन करता हूं। पं. हृदयनाथ कुंजरू कितने सिद्धांत परायण व्यक्ति हैं यह आज सवेरे हमें देखने को मिला। उन्होंने एक वर्तमान त्रुटि पर प्रकाश डाला है। जिन सिद्धांतों का उन्होंने यहां जिक्र किया है उनको अमली रूप देना है। उन्होंने अपनी वक्तृता में यह साफ-साफ बता दिया है कि त्रुटि क्या है और यह भी अच्छी तरह बता दिया है कि इन सिद्धांतों को क्रियात्मक रूप किस तरह दिया जा सकता है। बिलकुल न से कुछ तो बेहतर ही है। पं. कुंजरू यह चाहते हैं कि इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) को दो भागों में विभक्त कर दिया जाये। एक हो उपखण्ड (क) और दूसरा (कक)। मैं आशा करता हूं कि सभा अनुन्नत प्रान्तों के हितों का ख्याल करते हुए जिसके बारे में यहां आज और अभी उस दिन बहुत कुछ कहा जा चुका है, उनके संशोधन को अवश्य स्वीकार करेगी।

हम सब यहां जिस बात पर जोर देते आ रहे हैं उससे प्रसंगवशात् सभा के समक्ष यह बात आ जाती है कि आगमों के अभी से वितरण की कोई व्यवस्था नहीं हुई है। हो सकता है हम अन्य सदस्यों को यह समझाने में सफल न हो सके हों कि आयकर के तथा अन्य आगमों का विभाजन, उड़ीसा, आसाम, बिहार और कुछ हद तक बंगाल जैसे अनुन्नत प्रान्तों की समुन्नति के लिए नितान्त आवश्यक है। मेरा ख्याल है कि पंडित ठाकुरदास पूर्वी पंजाब को भी कम आय वाले प्रान्तों की सूची में शामिल करना चाहते हैं जिनके विकास के लिए आय-साधनों का अभी से वितरित कर देना जरूरी है। आदरणीय मित्र पं. कुंजरू से इस बात के सम्बन्ध में मैं सादर अपना मतभेद व्यक्त करूंगा कि संविधान के लागू होने के साथ ही आगमों के वितरण की बात राष्ट्रपति को, या मंत्रिमण्डल को या भारत सरकार को न सोचनी चाहिये। अन्य कई करों के सम्बन्ध में मसलन उत्पादन शुल्क तथा अन्य शुल्कों के सम्बन्ध में तो सरकार कमेटी ने ही इसकी सिफारिश कर दी है। इस कमेटी की सिफारिशों के सम्बन्ध में यदाकदा मैंने अपना मतभेद भी व्यक्त किया है और खास करके उसकी इस सिफारिश पर कि आयकर का वितरण संग्रह के आधार पर होना चाहिये। मेरी यह आपत्ति आज भी है और पंडित कुंजरू भी मेरे इस मन्तव्य का समर्थन कर चुके हैं कि आयकर का वितरण जनसंख्या के आधार पर होना चाहिये।

माननीय मित्र पं. कुंजरू ने इस सम्बन्ध में यहां आस्ट्रेलिया के ग्रांट्स कमीशन द्वारा सुझाई गई प्रणाली का जिक्र किया है। इस प्रणाली का थोड़ा बहुत आभास हमें नेहरू-अदारकर रिपोर्ट से भी मिल जाता है। बात यह है कि यद्यपि आस्ट्रेलिया एक सार्वभौम राज्य नहीं रहा है, पर वहां की शासन व्यवस्था औपनिवेशिक ढंग की थी और अपने अनुन्नत प्रदेशों के विकास के लिये वह अपने साधनों का इच्छानुसार उपयोग कर सकता था। किन्तु हमारा देश दुर्भाग्य से करीब डेढ़ सौ साल से—1947 तक एक—अधीनस्थ देश रहा है और यहां की शासन व्यवस्था ब्रिटिश औपनिवेशिक-प्रणाली पर चलाई जाती रही है जिसमें सारी आमदनी केन्द्र के हाथ में ही रहती थी और वह खर्च की जाती थी एक अंग्रेज अर्थ सदस्य की मरजी से, ब्रिटेन की भलाई के ख्याल से, न कि भारत की भलाई के ख्याल से। अब आज हम अपने हृदय को सुख सान्त्वना पहुंचाने वाली यह बात सुनना चाहते हैं कि स्वतंत्र भारत का अर्थ विभाग अब उस औपनिवेशिक पद्धति पर यहां का अर्थप्रशासन न चलायेगा जिस पर वह पहिले अंग्रेजों के दिनों में चलाया करता था। हमारी मांगों का कुल निचोड़ यही है। हमें इसकी चिन्ता नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर, ग्रांट्स कमीशन या वित्त-आयोग की नियुक्ति को अभी दो ढाई बरसों तक स्थगित रखते हैं क्योंकि यदि संविधान 26 जनवरी सन् 1950 को पास हो जाता है तो दूसरे मंच पर पहुंचकर हम राष्ट्रपति को या मंत्रिमण्डल को दो साल के अन्दर वित्त-आयोग की स्थापना के लिये बाध्य कर सकते हैं। उस हालत में सरकार समिति की रिपोर्ट के चार वर्ष बाद यह आयोग स्थापित होगा।

किन्तु प्रश्न यह है श्रीमान्, कि हम उन सिद्धांतों का निर्णय किस तरह करेंगे। जिनके आधार पर आय का वितरण किया जायेगा? हम अपनी भूल को मंजूर करते हैं कि इसके लिए हमने कोई संशोधन नहीं रखा है पर इसका कारण यह है कि हमें अन्धकार में रखा गया। सभा में आय-वितरण सम्बन्धी सिद्धान्तों पर कभी विचार ही नहीं किया गया और आज हम राष्ट्रपति को यह अधिकार दे

[श्री बी. दास]

रहे हैं कि आय-वितरण के सिद्धांतों को निर्धारित करने के लिए वह एक वित्त-आयोग का गठन करेगा।

माननीय पं. कुंजरू का मैं कृतज्ञ हूं कि उन्होंने अनुच्छेद 277 का जिक्र किया है। इस बात से कि आपात की स्थिति में राष्ट्रपति को प्रान्तीय आय साधनों में हस्तक्षेप का अधिकार रहना चाहिये, यह प्रकट होता है कि भारत सरकार की वही मनोवृत्ति है जो 1937 में यहां अंग्रेजी हुकूमत की थी। यह जानकर कि युद्ध छिड़ने वाला है 1937 में उसने भारत-शासन अधिनियम की धारा 126 का लोक सभा में संशोधन कर दिया और उसके साथ एक नई धारा 126-क जोड़ दी जिसके अनुसार देश के समस्त साधन को केन्द्रीय सरकार की मरजी पर रख दिया गया। न सिर्फ हमारे नेताओ को ही जेलों में बन्द कर दिया गया बल्कि प्रान्तों का शासन धारा 93 के अधीन होने लगा और यह सब किया गया ब्रिटेन के हित के लिये साधन। इसका परिणाम यह हुआ कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरे में भारत का सारा रक्त चूस गया। मित्र शक्तियों ने भारत से करीब चार पांच हजार करोड़ रुपये ठग कर छीन लिया और इस ठगैती में अमेरिका ने भी ब्रिटेन की तरह समान लाभ उठाया। इन्होंने सभी चीजें खरीदी कन्ट्रोल दर से युद्धपूर्व के भाव पर। आज देश में जो आर्थिक कठिनाई दिखाई दे रही है, जो गरीबी, भुखमरी, मुद्रास्फीति और बेहद महंगी दिखाई दे रही है उसका मूल कारण है यही धारा 126-क। मैं तो यह सोचता था कि अपनी राष्ट्रीय सरकार, लोकतंत्रीय सरकार कभी इस बात की कल्पना भी न करेगी कि आपात की स्थिति में उसे ऐसी आर्थिक शक्तियां प्राप्त रहनी चाहियें जैसी अनुच्छेद 277 के अधीन प्रावहित की जा रही हैं। यह अनुच्छेद उन लोगों के दिमाग की उपज है जिन्होंने देश की आजादी के लिये डटकर मोर्चा लिया है। मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि राष्ट्रपति को ऐसी शक्ति देना क्यों आवश्यक है।

वित्त विषयक किसी भी अनुच्छेद पर जब मैं गौर करता हूं तो मेरी बुद्धि हैरत में पड़ जाती है। हमने अनुच्छेद 258 को अभी स्थगित रख छोड़ा है पर यह है किस अभिप्राय के लिये? इसका अभिप्राय यह है कि बिक्री-कर केन्द्र के अधीन हो ताकि उसका संग्रह सर्वत्र एक समान हिसाब से हो सके। इस कर की चर्चा आज मन्द पड़ गई है क्योंकि हमारे अर्थ मन्त्री इससे सहमत हो गये हैं कि हाल में ही जब लंदन जायेंगे तो डालर और पौंड वाले देशों से ज्यादा आयात न करेंगे ताकि हमारे डालर और पौंड कोष से अधिक खर्च न हो। पर उस हालत में मद्रास जैसे प्रान्त का काम कैसे चलेगा जो विदेशों से आये ऐशो इशरत के सामान पर बिक्री कर के रूप में जो आय होती है उसी पर जीता है? अनुच्छेद 258 पर शायद आगे चलकर फिर विचार किया जायेगा पर मैं वित्त विषयक सभी प्रावधानों के पूरे खाके पर विचार कर रहा हूं। इस रवैया से तो वित्त-आयोग के सामने उससे भी कहीं गम्भीर मसले पेश होंगे जिनकी कल्पना मसौदा-समिति ने शुरू में कर रखी थी।

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 258 का बिक्री कर से कोई सम्बन्ध नहीं है?

***श्री बी. दासः** इसका बिक्री कर से सम्बन्ध है।

***अध्यक्षः** यह तो राज्यों के संविदा के सम्बन्ध में है।

***श्री बी. दासः** हां श्रीमान्। और इस सिलसिले को लेकर भारत सरकार का भी सम्बन्ध हो जाता है।

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद का बिक्री कर से कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री बी. दासः** तो मैं सभा को यह जानकारी दे देता हूं कि भारत सरकार, प्रान्तीय अर्थ मंत्रियों तथा औरों के साथ इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार कर रही है। भारत सरकार यह चाहती है कि सर्वत्र बिक्री कर में एकरूपता रहनी चाहिये। फिर भी उन्होंने यह निश्चय किया है कि विदेशों से प्रान्तों में माल कम आये जिसका फल यह होगा कि प्रान्तों की आमदनी घट जायेगी। विदेशी वस्तुओं के व्यवहार का मैं पक्षपाती नहीं हूं। जहां तक वश चलता है विदेशी वस्तुओं का मैं व्यवहार नहीं करता हूं। पर मेरा कहना यह है कि केन्द्र प्रान्तीय आय को घटाने के लिये तो स्वेच्छाचारिता से अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा है किन्तु जो मूल प्रश्न है कि आय वितरण की वर्तमान व्यवस्था का पुनरीक्षण होना चाहिये और उसमें आवश्यक परिवर्तन होना चाहिये, उसको वह तय ही नहीं करता है। बार-बार मैं यहां उन्हीं बातों को नहीं दुहराना चाहता हूं जिनको गत तीन चार दिनों के अन्दर कई मौकों पर मैं कह चुका हूं। पर केन्द्र और प्रान्तों के बीच आय वितरण के प्रश्न को लेकर यहां जो रवैया अख्तियार किया जा रहा है उससे मैं बिलकुल हैरत में पड़ गया हूं। वित्त-आयोग की स्थापना आज से तीन साल बाद की जायेगी इससे मुझे कोई खुशी नहीं है। पर आशा की एक मन्द किरण मुझे जरूर दिखाई दे रही है। पं. हृदयनाथ कुंजरू ने अपने संशोधन में जिस सिद्धांत का सुझाव रखा है अगर वह मंजूर कर लिया जाता है तो अनुन्नत प्रान्तों को कुछ उम्मीद हो जायेगी। भगवान् करें उन लोगों की, जिनके हाथ में केन्द्रीय शासन की बागडोर है, सुबुद्धि जागे और केन्द्र और प्रान्तों के बीच आय वितरण की जो वर्तमान व्यवस्था है उसका वह पुनरीक्षण करें। उड़ीसा, आसाम और बिहार जैसे अनुन्नत प्रान्तों को आगे चलकर जो कुछ वित्त-आयोग देगा उससे कुछ ज्यादा अगर उन्हें अभी से ही मिलने लगता है तो इस पर, मुझे पूरा विश्वास है, पं. कुंजरू को कोई आपत्ति न होगी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** संविधान का यह अनुच्छेद एक बहुत ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के प्रारम्भ से दो वर्ष के भीतर और उसके बाद हर पांचवें साल की समाप्ति पर या यदि राष्ट्रपति आवश्यक समझे तो उससे पहिले भी, वित्त आयोग के गठन का इसमें प्रावधान किया है। इस अनुच्छेद के खण्ड (3) (क) पर पं. कुंजरू ने दो संशोधनों की सूचनायें भेज रखी हैं। निजी तौर पर मेरा मत तो यह है कि इन संशोधनों से स्थिति और भी खराब हो जायेगी। सच तो यह है कि कुछ बातों को तथ्य मान कर वह इस सम्बन्ध में चल रहे हैं। मैं यह महसूस करता हूं कि वित्त-आयोग एक ऐसा निकाय होगा जिसे राष्ट्रपति के समक्ष सिर्फ अपनी सिफारिशें रखने का अधिकार होगा और वह कोई ऐसा निकाय नहीं होगा कि उसका निर्णय मानना ही पड़े। पं. कुंजरू यह चाहते हैं कि यह रूढ़ि चल पड़े कि वित्त-आयोग की जो भी सिफारिशें हों उन्हें राष्ट्रपति मान ही ले। वह यह मानते हैं कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह चाहे तो वित्त-आयोग की सिफारिशों को माने या

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

न माने। पर उनकी इच्छा यह है राष्ट्रपति अपने इस अधिकार का प्रयोग ही न करे और स्वेच्छा से इस सम्बन्ध में अपने ऊपर एक तरह का त्यागमूलक अध्यादेश लागू कर ले। अभी हाल में विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट हमें प्राप्त हुई थी और अभी उस दिन डॉ. कुंजरू ने खुद यहां यह कहा था कि उस रिपोर्ट हमें प्राप्त हुई थी और अभी उस दिन डॉ. कुंजरू ने खुद यहां यह कहा था कि उस रिपोर्ट को न स्वीकार करना ही बुद्धिमानी की बात थी। उनको यह भी समझना चाहिये कि कोई वित्त आयोग ऐसी भी सिफारिशें कर सकता है जैसी कि सरकार कमेटी ने की थीं जिन्हें भारत सरकार ने तथा मसौदा-समिति ने नामंजूर करना ही उचित समझा। इसलिये मेरा कहना यह है कि वित्त-आयोग विशेषज्ञों का एक ऐसा निकाय हो जो वित्तीय विषयों में अपने लोकतंत्र की स्थिति का अनुसंधान कर सिर्फ अपनी सिफारिशें राष्ट्रपति के सामने रख दे। अवश्य ही वह उन सब कारणों को भी बता देगा जिनके आधार पर उसने अपनी सिफारिशें की हैं। पर मैं यह नहीं समझता कि वित्त-आयोग कोई ऐसा निकाय हो सकता है जो संसद के इस सर्वसम्मत अधिकार को कि उसे ही वित्त विषयक मामलों में अन्तिम निर्णय देने की शक्ति प्राप्त है, अपने हाथ में ले ले। इसलिये मैं ऐसी किसी भी रूढ़ि को चलाने के विरुद्ध हूं जिसमें वित्त आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करना लाज़िमी हो।

पिछले अनुच्छेद में राष्ट्रपति को दी हुई आय वितरण की शक्ति का विरोध मैंने इसलिये किया था कि मेरे ख्याल में यह काम संसद को विधि द्वारा करना चाहिये। अगर डॉ. कुंजरू की यह बात मंजूर की जाती है कि ऐसी रूढ़ि चल जानी चाहिये कि वित्त-आयोग की सिफारिशें मंजूर ही की जायें तो मेरा अपना ख्याल है कि ऐसी रूढ़ि से बड़ा नुकसान पहुंचेगा। इससे संसद के आय वितरण सम्बन्धी अधिकार पर आघात पहुंचेगा। वस्तुतः वित्त-आयोग को इतना ही अधिकार दिया गया है कि करों की आमदनी के वितरण के सम्बन्ध में, विशेष अनुदान के सम्बन्ध में, या किसी संविदा वगैरह को जारी रखने या उसमें परिवर्तन करने के बारे में वह अपनी सिफारिशें दे सकता है। वस्तुतः वह किसी भी मसले पर, जो विचारार्थ उसे सौंपा जाये, अपनी सिफारिश दे सकता है। और यदि यह रूढ़ि चालू कर दी जाती है कि उसकी सिफारिशें स्वीकार करनी ही होंगी, तो इसका मतलब यह होगा कि मंत्रि मण्डल से भी अधिक शक्ति उसके हाथ में हो जायेगी। ऐसी अवस्था में तो मंत्रि-मण्डल उसकी किसी भी सिफारिश के खिलाफ कुछ कह ही नहीं सकता है। संसद की इन शक्तियों को छीनकर किसी भी आयोग को चाहे उसमें कितने भी बुद्धिमान व्यक्ति क्यों न हों, मैं देने को तैयार नहीं हूं। वित्त-आयोग की सिफारिशों पर संसद हस्तक्षेप करे इसके विरुद्ध डॉ. कुंजरू की आपत्ति यह है। मान लीजिये वित्त-आयोग किसी राज्य विशेष को समधिक अंश देने की सिफारिश करता है और राष्ट्रपति या संसद उसे कम कर देती है तो सम्बंधित राज्य केन्द्र पर यह आरोप लगायेगा कि उसने वित्त-आयोग द्वारा अभिस्तवित राशि से उसे वंचित कर दिया। निजी तौर पर मैं यह महसूस करता हूं कि संसद समस्त राष्ट्र की संसद होगी और उसमें प्रत्येक राज्य को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा। यदि संसद किसी भी प्रस्ताव के सभी गुण-दोषों पर विचार करके और वित्त-आयोग की सभी दलीलों को सोच समझ लेने पर भी इसी नतीजे पर पहुंचती है कि उस राज्य को अमुक अंश ही मिलना चाहिये तो मेरे ख्याल में

संसद को ऐसा फैसला देने का अधिकार है और इसके लिये उसके खिलाफ कोई भी सदस्य कोई आरोप नहीं लगा सकता है क्योंकि उस राज्य विशेष के प्रतिनिधि भी संसद में वितरण सम्बन्धी प्रश्न पर अपनी राय देने के लिये मौजूद रहेंगे। इसलिये मेरी समझ से वित्त-आयोग जैसे किसी बाहरी निकाय को ऐसा अधिकार देना कि वह संसद को या हुकूमत को आदेश दे सकता है कि वित्त का वितरण अमुक हिसाब से ही किया जाये, एक बड़े खतरनाक सिद्धांत को अपनाना होगा। इसलिये व्यक्तिगत रूप से मैं तो यही अनुभव करता हूं कि उनकी वह मूलभूत कल्पना ही गलत है जिसके आधार पर आपने दोनों संशोधन पेश किये हैं। यह वित्त-आयोग, संविधान में दी हुई व्याख्या के अनुसार एक ऐसा निकाय होगा जिसे राष्ट्रपति के सामने सिर्फ अपनी यह सिफारिश भर रख देनी होगी कि केन्द्र और राज्यों के बीच आय का वितरण किस तरह किया जाये; बस वित्त-आयोग का काम इतना ही होगा। इसे यह शक्ति न प्राप्त रहेगी कि वित्त-वितरण के बारे में जो भी निर्णय करे वह अंतिम रूप से मान्य होगा। अपने मत की पुष्टि के लिये आपने आस्ट्रेलिया का उदाहरण दिया है, जहां, उनका कहना है ऐसी रूढ़ि प्रचलन में है। मेरा ख्याल है कि सिवाय आस्ट्रेलिया के ऐसी व्यवस्था और कही भी नहीं है। आस्ट्रेलिया के हालात की मुझे इतनी खासी जानकारी नहीं है कि मैं आपको यह बता सकूं कि वहां क्यों ऐसी व्यवस्था रखी गई है। किन्तु जहां तक कि अपने देश का सम्बन्ध है, मैं यही अनुभव करता हूं कि इस सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार संसद को ही होना चाहिये और वितरण के लिये वह जो भी सिद्धांत निर्धारित करेगी उसके लिये कोई भी संसद की आलोचना नहीं कर सकता है। क्योंकि देश के सभी प्रदेशों के प्रतिनिधि वहां मौजूदा रहते हैं। इसलिये मेरा तो यही ख्याल है कि वित्त-आयोग की सिफारिश को, इस संविधान के अनुसार और डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित इस खण्ड के अनुसार, वही बल प्राप्त रहेगा जो सिफारिशों को होता है और वह आदेश मूलक कभी नहीं हो सकती हैं। अगर मेरा मन्तव्य ठीक है तो फिर ये दोनों संशोधन अनावश्यक हैं। डॉ. कुंजरू यह चाहते हैं कि केन्द्र और राज्यों के बीच आय कर के आगमों का वितरण वित्त-आयोग करें। अनुच्छेद 251 में कहा गया है:

> "किसी वित्तीय वर्ष में से किसी ऐसे कर के शुद्ध आगम का, जहां तक वह आगम प्रथम अनुसूची के भाग (ग) में उल्लिखित राज्यों में से अथवा संघ उपलब्धियों के सम्बन्ध में देय करों से मिला हुआ आगम माना जाये वहां तक के सिवाय, ऐसा प्रतिशत भाग, जैसा विहित किया जाये, भारत की संचित निधि का भाग न होगा किन्तु उन राज्यों को सौंपा जायेगा जिनके भीतर वह कर उद्गृहीत होता है तथा वह उन राज्यों को उस रीति और उस समय से, जो विहित किया जाये वितरित होगा।"

इन अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि 'विहित' शब्द का अर्थ है:-

> "जब तक वित्त-आयोग गठित न हो जाये तब तक राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित और वित्त-आयोग के गठित हो जाने के पश्चात् वित्त-आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा आदेश द्वारा विहित।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

डॉ. कुंजरू यह चाहते हैं कि वित्त-आयोग को अधिकार न होना चाहिये कि हर मौके पर जब भी आयकर के आगम के वितरण का मसला उसके पास भेजा जाये तो वह उस पर अपनी सिफारिश दे बल्कि उसे अपनी सिफारिश देने का सिर्फ एक बार, शुरू में जब मसला उसको भेजा जाये तभी अधिकार रहे। पर हो सकता है आज की हालात के मुताबिक हम आयकर का वितरण एक ढंग से करना तय करें पर आग चलकर केन्द्र की आर्थिक स्थिति आज से और कमजोर हो जाये और वह आयकर के आगम से कोई अंश प्रान्तों को दे न सके और प्रान्तों की स्थिति में सुधार हो जाये जिससे उन्हें केन्द्र से सहायता की जरूरत न रह जाये। इसलिये अगर यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो वित्त-आयोग वितरण व्यवस्था में कोई परिवर्तन ही नहीं कर सकता है। मेरी समझ में अच्छा यही होगा कि वित्त-आयोग वितरण व्यवस्था में कोई परिवर्तन ही नहीं कर सकता है। मेरी समझ में अच्छा यही होगा कि वित्त आयोग हर बार राष्ट्रपति को अपनी यह सिफारिश दे दे कि स्थिति के अनुसार आय का वितरण किस तरह किया जाये। अगर कोई प्रतिशत भाग हमेशा के लिए निश्चित कर दिया जाता है तो इससे उस अभिप्राय का ही हनन हो जायेगा जिसके लिये वित्त आयोग की हम स्थापना कर रहे हैं। इसलिये डॉ. कुंजरू के प्रथम संशोधन को मैं समुचित नहीं समझता। वह यह चाहते हैं कि वितरण में परिवर्तन करने का सम्बन्ध है राष्ट्रपति या केन्द्रीय शासन का अधिकार अक्षुण्ण रहना चाहिये और वित्त-आयोग द्वारा उसका अपहरण न होना चाहिये। वह यह चाहते हैं कि वित्त आयोग की सिफारिशों को मान्यता मिलनी ही चाहिये किन्तु मेरी कहना यह है कि उसकी सिफारिश महज सिफारिश ही समझी जाये और उनको मानना या न मानना राष्ट्रपति की इच्छा की बात है।

उनके संशोधन के दूसरे अंश में राज्यों में उनके अंश के वितरण की बात कही गई है किन्तु अनुच्छेद 260 में संघ तथा राज्यों के बीच आगम के विभाजन की बात कही गई है। इसलिये इस संशोधन के स्वीकृत हो जाने से वित्त आयोग को यह अधिकार ही न रह जायेगा कि वह यह सिफारिश कर सके कि उत्पादन शुल्क की आय का कितना प्रतिशत अंश संघ को जाना चाहिये और कितना प्रतिशत राज्यों को। वह चाहते हैं कि केन्द्र एवं राज्यों को कितना कितना अंश दिया इसे निश्चित करने का अधिकार राष्ट्रपति को होना चाहिये। यानी राष्ट्रपति यह निश्चित करेगा कि अमुक प्रतिशत राज्यों को मिलना चाहिये और सब वित्त-आयोग इस बात का फैसला करेगा कि वह प्रतिशत उनमें किस तरह वितरित किया जायेगा। इसका मतलब यह होगा कि वित्त-आयोग सर्वथा एक निरर्थक निकाय होगा और उसे यह निर्धारित करने का अधिकार न होगा कि संघ को आगम का अमुक प्रतिशत मिलेगा और राज्यों को अमुक। इसलिये मेरी समझ से तो संशोधन का यह अंश प्रथमांश से भी अधिक खतरनाक है। मुझे वस्तुतः डर तो इस बात का है कि इससे सारा अधिकार संसद से छिनकर एक दूसरे ही अधिकारी—चाहे वह राष्ट्रपति हो या वित्त-आयोग—के हाथ में पहुंच जायेगा। मैं चाहता यह हूं कि इस सम्बन्ध में अंतिम अधिकार संसद को प्राप्त रहना चाहिये, इसलिये मेरी समझ से तो यह संशोधन ही अनावश्यक है। देश की आर्थिक स्थिति क्या है यह बात संसद को अवश्य मालूम होनी चाहिये। वित्त-आयोग को इस बात का पूरा अधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि शुल्क के हर पहलू की जांच करे और केन्द्र तथा प्रान्तों की

आर्थिक स्थिति क्या है इसका अनुसंधान करे ताकि इसकी रिपोर्ट से संसद को प्रकाश मिल सके। दूसरा संशोधन और खतरनाक इसलिये है कि इससे वित्त-आयोग सर्वथा एक निरर्थक निकाय हो जाता है। सच तो यह है कि यहां जब अनुच्छेद 253 और 254 पर विचार किया जा रहा था तो हर प्रान्त ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि उस प्रान्त से जो भी कर संग्रहीत किये जाते हैं उनकी आय का एक अंश उनको मिलना चाहिये। इसलिये यह अधिकार राष्ट्रपति को न मिलना चाहिये बल्कि संसद को मिलना चाहिये। किन्तु डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में यह कहा गया है कि वितरण का अधिकार न वित्त-आयोग हो होगा और न संसद को बल्कि राष्ट्रपति को होगा और वही यह निश्चय करेगा कि आय का कितना अंश संघ को जायेगा और कितना राज्यों को। वित्त आयोग सिर्फ इस सम्बन्ध में रिपोर्ट देगा कि निर्धारित अंश का वितरण किस प्रकार किया जायेगा। मेरा ख्याल है कि ये दोनों ही संशोधन इस धारणा पर आधृत हैं कि वित्त आयोग की सिफारिशों को मानना ही होगा। किन्तु मैं नहीं समझता कि वित्त आयोग की सिफारिशों को मानना लाज़िमी होना चाहिये। आगामी अनुच्छेद पर मैं इस आश्य का एक संशोधन रखने जा रहा हूं कि आगम वितरण के सम्बन्ध में जो निर्णय किया जायेगा उसको संसद का समर्थन प्राप्त होना जरूरी होगा और संसद ही यह निर्णय करेगी कि राष्ट्रपति ने संघ और राज्यों के बीच आगम वितरण के लिये जो प्रतिशत निर्धारित किया है वह ठीक है या नहीं। इस सम्बन्ध में अंतिम अधिकार संसद को ही प्राप्त रहना चाहिये और देश की अवस्था के अनुसार वही इसका आखिरी निर्णय करेगी। आशा है श्रीमान्, कि मेरी बातों को सदस्यगण ध्यान में रखेंगे और उन पर समुचित विचार करेंगें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** सभा ने अवश्य ही इस बात को समझ लिया होगा कि माननीय मित्र डॉ. कुंजरू का संशोधन अनुच्छेद 260 के खण्ड (2) के सम्बन्ध में है जिसमें वित्त-आयोग के प्रकार्य बताये गये हैं। उनके द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का ठीक-ठीक महत्व क्या है इसे समझने के लिए मेरे ख्याल में उस व्यवस्था को समझ लेना जरूरी है जो हमने स्वीकृत अनुच्छेद 251 और 253 में प्रावहित की है। मसौदे में आयकर के वितरण की और केन्द्रीय उत्पादन शुल्क के वितरण की अलग-अलग व्यवस्था की गई है और दोनों में विभेद किया गया है। आयकर के आगम के विभाजन एवं वितरण का काम राष्ट्रपति पर छोड़ा गया है और वही इस सम्बन्ध में निर्णय करेगा। अनुच्छेद 251 (2) को उसके खण्ड (4), (1) और (2) के साथ मिलाकर पढ़ने से यह बात आपको स्पष्ट हो जायेगी। किन्तु केन्द्रीय उत्पादन शुल्क की आमदनी के विभाजन एवं वितरण का काम सौंपा गया है संसद को और वही विधि द्वारा इस सम्बन्ध में निश्चय कर सकती है जैसा कि अनुच्छेद 253 में साफ-साफ कहा गया है।

एक बज चुका है इसलिये अपनी शेष बातें अब कल कहूंगा।

इसके पश्चात् सभा बुधवार ता. 10 अगस्त सन् 1949 ई. के प्रात: 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।